सी.एस.डी.एस. द्वारा आयोजित सेमीनार

उत्तरांचल में लोकतंत्र की समग्र पहचान

24 अगस्त 2001, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

एवं

उत्तराखंड में लोकतांत्रिक नव निर्माण की प्रक्रिया

2 दिसम्बर 2001, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

संयुक्त रपट

इन सेमीनारों का मुख्य उद्देश्य नवगठित राज्य उत्तरांचल में लोकतांत्रिक संस्थाओं को अधिक मजबूत, पारदर्शी और जनोन्मुखी बनाने के लिए चर्चा को आगे बढ़ाना था।

श्री विजय प्रताप ने परिचायात्मक टिप्पणी करते हुए कहा कि "वसुधैव कुटुम्बकम के प्रारूप में लोकतंत्र के कई स्तरों की बात की गई है। इकोलाजिकल डिमोक्रेसी, यानी प्रकृति से जो हमारा रिश्ता है, औद्योगिक क्रांति के प्रभाव में (या दुष्प्रभाव में) हमारा प्रकृति से एक उपभोगवादी रिश्ता बन गया है। उसके चलते भारत ही नहीं वरन संपूर्ण विश्व के प्रभुवर्ग का प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा हो गया है। जिस कारण परंपरा से जो किसान एवं आदिवासी तबके हैं, खासतौर पर तीसरी दुनिया में जो निर्णायक बहुसंख्या हैं उनका अधिकार अपने प्राकृतिक संसाधनों पर नहीं रहा है।

यह संदर्भ संपूर्ण विश्व हेतु महत्व का तो है ही लेकिन उत्तराखंड एवं प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित परिवेश के निवासियों हेतु यह संकट सीधा–सीधा है और विडंबना यह है कि ऐसे लोग डिग्रेडिंग इकोलॉजिकल लाइफ–स्टाइल का हिस्सा नहीं हैं। उनके कारण प्रकृति नष्ट नहीं हो रही है। उनकी जीवनचर्या में अभी भी प्राकृतिक संवर्द्धन के तमाम क्रिया–कलाप हैं। उनके जीवन में उपभोग और संवर्द्धन का संतुलन अभी भी बेहतर है। लेकिन इकोलॉजिकल डिग्रडैशन की मार सबसे पहले उन्हीं लोगों पर पड़ेगी जो चाहे छोटे किसान हो, चाहे आदिवासी हों चाहे उत्तराखंड जैसे अंचल के निवासी हों। तो उस नजरिये से इकोलॉजिकल डिमोक्रेसी का सवाल सबसे बड़ा है।

दूसरा सवाल इकोनोमिक डिमोक्रेसी का है – कि कैसी प्रौद्योगिकी होगी। कि इंसान किस तरीके से अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन करेगा। पूंजी का कैसे उपयोग करेगा। पूंजी और व्यक्ति के श्रम का क्या रिश्ता होगा। आर्थिक श्रेणियों का क्या रिश्ता होगा। राज्य का भागीदारी वाला एवं लोकतांत्रिक चरित्र किस तरह के अर्थतंत्र में संभव होगा? ये सब सवाल आर्थिक लोकतंत्र से जुड़े हुए हैं।

तीसरा मुद्दा सोशल डिमोक्रेसी का उठाया गया है – कि समाज का कोई भी वर्ग (तबका), किसी भी जाति में पैदा हुआ हो, उसकी सामाजिक इज्जत मुख्य सवाल है। और सामाजिक इज्जत के संघर्ष के अनुसार आज का दौर एक मायने में स्वर्ण युग है क्योंकि इतने बड़े पैमाने में दलितों एवं पिछड़ों ने यह स्वप्न कभी नहीं देखा था कि वे इस मुल्क के बादशाह हो सकते है। मुल्क की केंद्रीय सत्ताओं पर उनका भी हक है। यह सपना भी अपने–आप में एक तरह के क्रांतिकारी परिवर्तन को पैदा कर रहा है। यह उपलब्धि लोकतंत्र की 200 सालों की उपलब्धि है। चूंकि अपने सपने के हिसाब से यह अपर्याप्त उपलब्धि है। इसलिए सभी गोष्ठियों में एक विलाप की मुद्रा रहती है कि सब गड़बड़ हो गया। कि सब अनैतिक हो गया। पर मेरी राय यह है कि इतने बड़े और मौलिक परिवर्तन इतनी कम हिंसा से और इतनी व्यापक भागीदारी से शायद इतिहास में कम ही होते हैं। अपने नवपरंपरावादी मित्र कहते हैं कि सब अंग्रेजों ने ही गड़बड़ किया। उससे पहले तो सब

हार्मोनियस समाज था हमारा, म्युचुअलिटी पर निर्भर। इसलिए हम कैसे जाति विहीन, पर सामुदायिकता विहीन नहीं, समाज गढ़ेगे। व्यक्ति व समष्टि के बीच संतुलन कैसे कायम करेंगे। यह सामाजिक लोकतंत्र का सवाल है।

इसी भांति हम अपनी पहचान, दूसरे के संदर्भ में कैसे परिभाषित करते हैं। वह दूसरा समूह भी हो सकता है और व्यक्ति भी। मुझे लगता है कि कल्चरल डिमोक्रेसी का सवाल आज इस देश में जीवन–मरण का सवाल है। पॉजिटिव एजेंडा के तौर पर दलित बहुजन के सशक्तीकरण की बात एवं सामाजिक सद्भाव एवं सहअस्तित्व यानी एंटी कम्युनल कंसीयसनेस यानी सांस्कृ ितक लोकतंत्र की बात पर भी हम अपनी संपूर्ण परिचर्चा में अपनी बात रखेंगे।

ये चारों पहलू सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व पारिस्थितिक जिनका मैने जिक्र किया। इन का संयोजन कैसे होगा? समाज की वैध नियंत्रक संस्थाएं क्या होंगी? उसमें लोक की भागीदारी कैसे होगी? उसमें स्वराज का स्वप्न गांव से लेकर, जिस स्तर पर भी हम अपने को हम के तौर पर परिभाषित करते है तो यह जो पूरा हम है। इसके जो भी अंगोपांग हैं उनके बीच में आपसी रिश्ते परिभाषित करने का सवाल राजनीतिक लोकतंत्र से जुड़ा हैं। इस दौर में राजनीतिक लोकतंत्र में सिर्फ राज्य राष्ट्र ही एक नियंत्रक संस्था नहीं है। राज्य राष्ट्र को चलाने के लिए तानाशाहियों में भी कहा जाता है कि यह एकदलीय लोकतंत्र है। उन्हें भी एक रिलीजियस काउन्सिल बनानी पड़ती है तो जो नियंत्रक संस्थाएं अपने समाज को नियंत्रित करती हैं, वो क्या हैं? हमारे राज्य का चरित्र कैसा होगा? स्थूल संदर्भ में हमारा प्रतिनिधिक लोकतंत्र है वो भागीदारी वाला लोकतंत्र हर स्तर पर कैसे बनेगा? ये पांच सवाल संदर्भ के तौर पर प्रारूप में रखे हैं और मेरा निवेदन है कि आप सब इन सवालों पर भी अपनी राय रखकर विमर्श को सुविधाजनक बनाएंगे।"

सी.एस.डी.एस. के निदेशक प्रो. वी.बी. सिंह ने कहा– उत्तरांचल एक नया राज्य है, काफी जद्दोजहद के बाद मिला हुआ। लेकिन छोटा प्रांत बन जाने से समस्त समस्याओं का समाधान हो जाएगा, ऐसा नहीं है। हां कुछ प्रशासकीय व राजनैतिक सुधार हो जाएं, विकेंद्रीकरण हो जाए। हमारा उद्देश्य है कि नवनिर्मित उत्तरांचल में नवीन समाज निर्माण की बात हो। मेरी समझ से वह हर चीज संभव है जिसके लिए हर संभव प्रयास किया जाए। और मेरी उत्तरांचल के नव निर्माण में रत्तीभर भी जरूरत हो तो मैं हर संभव योगदान हेतु तैयार हूं।"

"ग्लोबलाइजेशन के वर्तमान दौर में क्या उत्तराखंड भ्रष्टाचार मुक्त हो सकता है।" इस विषय पर **प्रो. पुष्पेश पंत** ने कहा– छोटे राज्य का निर्माण मात्र ही बड़ी उपलब्धि नहीं है। मुझे लगता है कि कोई भी समझदार व्यक्ति वर्तमान उत्तराखंड के चरित्र को देखकर तो कतई इसे उपलब्धि नहीं कह सकेगा।

छोटे राज्यों के साथ भ्रष्टाचार अपरिहार्य रूप से जुड़ा हुआ है। हरियाणा की भौतिक सफलता घोर पारिवारिक सामंतशाही व भ्रष्टाचार से जुड़ी हुई है। हिमांचल में भी रामलाल हो या सुखराम दोनों ने ही भ्रष्टाचार के नये प्रतिमान खड़े किये। हिमांचल प्रदेश की सफलता भी पारिवारिक वंशवाद एवं भ्रष्टाचार से ही जुड़ी हुई है। अन्य छोटे राज्य है गोवा एवं राणे परिवार, सिक्किम में नरबहादुर भंडारी है, इसी तरह मिजोरम, नागालैंड भी है। उत्तरांचल विधेयक आने के बाद यह संभावना बनी थी कि उत्तराखंड इन सबसे परे होगा। लेकिन वर्तमान सरकार की कार्य प्रणाली को देखकर अब ऐसा नहीं लगता है।"

श्री मनोज पाण्डे ने कहा– "ग्लोबलाइजेशन के दौर में हालांकि उत्तरांचल एक छोटा राज्य है इसलिए उत्तरांचल भ्रष्टाचार के कीचड़ में एक कमल के रूप में खिल सकता है। भारत में भ्रष्टाचार पिछले 5–10 दशकों में बहुत तेजी से बढ़ा है। कायदे–कानून भ्रष्टाचार से लड़ने का माध्यम है। उसके ऊपर भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम पी.सी.ए. बनाया, कर्मचारियों हेतु कोड आफ कंडक्ट बनाये

और अब एक कोड ऑफ इथीक्स भी लागू किया जा रहा है। लेकिन नतीजा वही ढाक के तीन पात।

उत्तरांचल के अच्छे राज्य का स्वप्न तभी पूर्ण हो सकता है जब भ्रष्टाचार को कम से कम अपने स्तर पर न बढ़ने दें। भ्रष्टाचार जैसी विसंगतियां एक कुचक्र के चलते पैदा होती हैं। इस कुचक्र को तोड़ने में भ्रष्टाचार विरोधी मोर्चों को सफल होना ही होगा। क्योंकि भ्रष्टाचार के विरूद्ध हार का अर्थ है भ्रष्टाचार का बोलबाला। भ्रष्टाचार के विरूद्ध लड़ने में उन क्षेत्रों का ही चयन प्रथम करें, जहां विजय अवश्यंभावी हो और मनोबल सबका बढे। अंतिम बात कि पोलिटिकल विल के बगैर यह संभव नहीं है। चूंकि जनतंत्र में पोलिटिकल लीडरशिप ही सबसे ऊपर है। पर क्या हमारे देश की पॉलिटिक्स में वे लोग आते हैं कि जिनका सरोकार देश सेवा या समाज सेवा हो? उन्हें धनार्जन करना होता है, कर्जा लेकर चुकाना होता है। ऐसी स्थिति में पोलिटिकल विल कहां से आएगा। ऐसे में बुद्धिजीवियों और एन.जी.ओज. पर ही आशा बंधती है। इसके तीन घटक हैं–

1. ऐसी स्थिति पैदा हो कि पोलिटिसियन्स को सुशासन व अच्छे कार्यों से वोट मिलें। मीडिया के माध्यम से और जन आंदोलनों द्वारा ऐसी स्थिति पैदा की जा सकती है।
2. उन्हें शिक्षित करने की जरूरत है लेकिन वह शिक्षा हम तभी दे पायेंगे जब पहले ही कुछ स्थितियां बना लें – जहां लोग ये पूछने लगें कि तुमने समाज हेतु क्या किया है? तब हम उन्हें यह बता सकेंगे कि वोट हेतु मत लड़ो, वोट तो बाइप्रोडक्ट के रूप में मिलते रहेंगे यदि सुशासन कर सको तो।
3. तीसरी बात ईमानदार लोगों के हाथ मजबूत करने होंगे। सम्मान देकर। प्रचार देकर। मुझे केवल यही तरीका लगता है, जो पोलिटिकल विल क्रिएट करने में समर्थ है।

उत्तरांचल में बहुत जन ऊर्जा अभी निहित है। हमारे पास ऐसा समय है जबकि लोगों में राज्य बन जाने की वजह से सुराज्य का सपना टूटा नहीं है। अभी हमारा राज्य नोर्थ–ईस्ट की तरह सीनिकल नहीं हैं। तो समय रहते हमें ऐसे कदम उठाने होंगे जो हमें आगे बढ़ने में मदद कर सकें। इस संदर्भ में प्रशासनिक सुधार आयोग भी कारगर हो सकते हैं। क्योंकि एक आयोग में बहुत सदस्य अलग–अलग मुद्दों पर समग्र रूप में सुधार कर सकते हैं। ऐसा आयोग ज्यादा वर्षों तक न रहे वरन तात्कालिक समस्याओं को सुलझाने हेतु शीघ्र कार्य करे। इस वक्त क्योंकि हाइकोर्ट, पब्लिक सर्विस कमिशन आदि संगठन आ रहे है तो इन्हें नई कार्य प्रणाली का प्रयोग प्रारंभ करने का सुअवसर है क्योंकि इस या आगामी सरकार के बाद जनता साथ नहीं दे पाएगी, ब्यूरोक्रेसी भी साथ नहीं दे पाएगी और फिर कीमत भी इस सबकी ज्यादा चुकानी पड़ेगी।

इस सब के लिए एन.जी.ओज. एक्टिविस्ट और बुद्धिजीवियों की जिम्मेदारी ज्यादा है। क्योंकि उत्तरांचल में इस तरह के संघर्षों की परिपाटी रही है। महिलाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण होगी। इस ऊर्जा का प्रयोग भी भ्रष्टाचार के विरूद्ध किया जाए। यह हस्तक्षेप सतत होना चाहिए चुनाव से पूर्व, बाद एवं दौरान भी ऐसा हो कि आर.एल.ई.के. जैसे संस्थान (रूरल लिटिगेशन ऐंड इनटाइटनमेंट केंद्र देहरादून) जो प्रयास करने जा रहा है, चुनाव के बाद भी ऐसे प्रयास खत्म न हों। इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्र विशेष लें जैसे उत्तरांचल में पी.डी.एस., लाइसेंसिंग प्रोसेसिंग, एडमिनिस्ट्रेटिव मोनिटरिंग, आइ.टी. के द्वारा जनता के बीच सरकार को लाने जैसी पहल करनी होंगी।

भूमंडलीकरण के दौर में भ्रष्टाचार ज्यादा व्यापक होता जा रहा है। आज एम.एन.सीज. आ गई है और भ्रष्टाचार आम आदमी को बड़े–बड़े स्वप्न दिखाकर, और छद्म तरीके से किया जाता है। बड़ी कंपनी के दबाव में आकर उत्तरांचल के एक नेता ने पर्यटन के बारे में कहा कि फलां नीति चलानी है तो आपको कहीं पता नहीं चलेगा कि इसमें दबाव क्या–क्या हैं। उत्तरांचल को कुछ क्षेत्रों में ज्यादा ध्यान देना होगा–

पर्यटन, जंगल, दुर्लभ पादप संपदा और बड़े उद्योग। इन पर नीतियां बनाने के लिए जनता को जागरूक बनाना जरूरी है।"

प्रो. के.एन. भट्ट ने कहा– "भूमंडलीकरण से अगर भ्रष्टाचार दूर हुआ होता तो ट्रीलियन्स आफ डालर्स की वर्ल्ड इकोनोमी है वो आज 50 एम.एन.सीएज. की आय है। क्या आप यह कल्पना कर सकते है कि वो ट्रांसपैरेंट होकर आयेंगी? क्या आप जान सकते हैं उन्होंने कहां कितना पैसा दिया हैं? इस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने जन्म ही क्यों लिया? क्योंकि हम सेंट्रलाइज्ड ट्रेनिंग का मॉडल लेकर आये थे। 40–50 साल उस मॉडल ने काम किया लेकिन यह सेंट्रलाइज्ड मॉडल तो चल नहीं सका। यह सभी जगहों में स्पष्ट हुआ। सारी सोशलिस्ट इकोनामिक्स इस सेंट्रलाइज्ड प्लानिंग के चलते खत्म हो गयी। तब क्या इलाज है– तो वह है डिसेंट्रलाइज्ड प्लानिंग।

हमारा बड़ा सौभाग्य है कि इस देश में साइलेंट रिवोल्यूशन हुआ है वो है संविधान में 73वां व 74वां संशोधन साथ ही दुर्भाग्य भी है कि आज उसे आये हुए 8 या 9 साल हुआ चाहते है मगर कहीं कोई राज्य नहीं जिसने इस संशोधन की ठोस स्प्रिट को पहचाना हो। उस ठोस स्प्रिट के आधार पर सिर्फ केरल ने कुछ प्रयास किया है। हमने 1996 में इस पर कार्य किया। पी.यू.सी.एल. ने। जिसमें महिला मंच का विशेष सहयोग था। 'पहाड़' का सहयोग था। पत्रकारों का सहयोग था। हमने कहा कि यदि केरल में यह मॉडल लागू हो सकता है तो उत्तरांचल में क्यों नहीं हो सकता?

उत्तराखंड की भूमि में कौन से तत्व हैं जो सफलता निर्धारित करेंगे। मेरी नजर में 1. प्राकृतिक संसाधन, 2. मानवीय संसाधन। जहां दोनों मौजूद हों तो क्या कहने। उत्तरांचल राज्य में कार्यशीलों का आंकड़ा उत्तर प्रदेश की तुलना में 10 प्रतिशत ज्यादा है अर्थात 42 प्रतिशत। दूसरा– श्रमशक्ति की अभिरूचि – उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था में 1870 के बाद मार्केट व्यवस्था शुरू हुई। लेकिन प्राकृतिक संसाधनों को डेवलप करने का मौका नहीं मिला। अनइम्पलायमेंट हमारी सबसे बड़ी समस्या है। क्या ये अनइम्पलायमेंट ग्लोबलाइजेशन से खत्म नहीं होगा? कुछ आंकड़े प्रस्तुत हैं जो हमारा आर्गेनाइज्ड सेक्टर है जिसमें लेबर वेलफेयर लॉ लागू हो सकते है। वो केवल 9.6 प्रतिशत है, 90 प्रतिशत से ज्यादा हम अनआर्गेनाइज्ड हैं।

ग्लोबलाइजेशन के भीष्मपितामहों यानी कि स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम के जो प्रणेता है, उनका कहना है कि पॉलिसी लेवेल पर यह कंसीव करने को तैयार है कि 8 से 10 प्रतिशत अनइम्पलायमेंट हो सकता है तब किसके मावनाधिकारों की बात कर रहे हैं? अनइम्पलायमेंट हिंदोस्तान में कैसे डिफाइन होता है? जो जवाहर रोजगार योजना में 10 दिन का सड़क बनाने का भी काम ले लेता है तो गवर्नमेंट उसको इम्पलाइड दिखा देती है। उसके बाद भी ये प्रणेता कहते हैं कि 8 से 10 प्रतिशत अनइम्पलायमेंट रेट एक्सेप्टेबल हैं। तब हम किसके इम्पावरमेंट की बात कर रहे हैं। तो आपका इम्पलायमेंट कहां से जेनेरेट होगा? जेनरेट होगा तब, जब आप लोकल गवर्नमेंट, विलेज गवर्नमेंट को कलेक्टिव प्रोपर्टी राइट्स दे देंगे। क्या प्रोविंसियल गवर्नमेंट की इंटेगरिटी बहुत महत्वपूर्ण हैं और लोकल गवर्नमेंट की नहीं? क्या सारे जंगल की जमीन ग्राम सरकार को स्थानांतरित नहीं हो सकती? क्या उसकी अपने जंगल को संरक्षित करने की क्षमता नहीं है? ऐसा तो नहीं लगता इतिहास, भूगोल को देखकर। उनलोगों ने तो हजारो–हजार वर्षों तक इनको मैनेज करके रखा है। उनको ज्ञान है कि कहां, कब, क्या करना है।

उत्तराखंड में अत्यधिक प्राकृतिक संसाधन हैं। जैसे जल प्रचंड मात्रा में है। हम आज जल विभाजन पर लड़ रहे हैं। हम क्यों नहीं ऐसा करते कि ग्रामों को उनके संपत्ति अधिकार दे दें। आज की सरकार (उत्तरांचल) को देख कर तो ऐसा नहीं लगता। उसे तो दो कार्य करने थे एक चुनाव व परिसीमन दूसरा संपति का बंटवारा। इनको तो किया ही नहीं। उसने तो बड़े–बड़े समझौते किये हैं।

विकास का मॉडल देने हेतु केरल जैसी श्रमदान की परंपरा भी हमारे पास है। जातीय संघर्ष नगण्य है। आज भी रिवेन्यू व पुलिस ऐडमिनिस्ट्रेशन एक ही है। स्टेट फाइनेंस कमिशन बनाना चाहिए था वो अभी तक बनाया ही नहीं है।

चाइना में टी.वी.ई. (टाउन विलेज इंटरप्राइज़) शुरू हुआ है जो पूर्णरूपेण स्थानीय लोगों के हाथों में है और ये टी.वी.ई. ग्लोबलाइज्ड फोर्सेज से अपने उत्पाद की मार्केटिंग करें, उसमें राज्य मात्र दार्शनिक गाइड का काम करते हैं। ऐसी सोशलिस्ट आइडियोलाजी वाला राज्य भी अपने लोगों को इम्पावर करके एक यूनीक मॉडल ला रहा है। हमारे यहां सभी आदर्श स्थितियां मौजूद हैं जिन पर विकास का ढांचा खड़ा हो सकता है। तो आज इस इतिहास के मोड़ पर हमें एक सामाजिक आंदोलन की जरूरत है। हमें जनता के पास जाना होगा। पी.यू.सी.एल. की बात शहरी क्षेत्रों में गयी है अब परकोलेट होकर ग्रामों में जा रही है। महिला मंच को ही लें – गैरसेंण की यात्रा के दौरान महिला मंच ने महिला सशक्तीकरण और पंचायतों की जानकारी दी है।

हम सभी संगठन मिलकर गांव के लोगों के पास जाएंगे तो कौन हमें अशक्त करेगा। क्योंकि करप्शन रिड्यूसेस इन डिसेंट्रलाइजेशन। तब लोग अपने विकास की बात समझेंगे और अपनी नीतियां स्वयं निर्धारित करेंगे। यह हमारे लिए कम्पलशन भी है, वो इसलिए क्योंकि उत्तरकाशी वैली की दशायें, अर्थव्यवस्था भिन्न है। मिलम की भिन्न है। विभिन्नता काफी ज्यादा हैं। ये कम्पलशन इसलिए भी है क्योंकि जो फ्लो ऑफ कैपिटल वहां पर हुआ है ग्लोबलाइजेशन की ताकतों के आने से इसका खतरा कहीं ज्यादा बढ़ गया है इससे रक्षा कौन करेगा? जल का, जंगल का, संपत्ति का संरक्षण कौन करेगा, इसकी जिम्मेदारी एम.एन. सीएस. को दे देंगे तो हम कैसे अपेक्षा करेगे कि वे इनकी रक्षा करेंगे?"

श्री भुवन पाठक ने विकेन्दीकरण की नीति पर सवाल उठाते हुए कहा– "भट्टजी ने कहा कि विकेंद्रीकरण समाधान है। लेकिन मै यह मानता हूं कि यह सवाल अवधारणाओं, मान्यताओं का है। यदि हम केंद्रीय मान्यताओं के चलते विकेंद्रीय व्यवस्थाओं का संचालन करेंगे तो हमारे कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। मैने पाया कि हमारी अधिकांश बात व्यवस्थाओं के विकेंद्रीकरण पर होती है, मान्यताओं के विकेंद्रीकरण पर नहीं। स्थानीयता मुझे विकेंद्रीकरण से बेहतर लगता है। क्योंकि आधुनिक विकास की अवधारणाओं ने विकेंद्रीकरण शब्द को इतना प्रदूषित किया है कि इससे कुछ होने वाला नहीं। हमारी सभी अवधाराणाएं – न्याय, विकास, राज्य परिवहन इत्यादि सभी केंद्रीय ही है। हम इन्हीं केंद्रीय मान्यताओं के तहत कुछ विकेंद्रीकरण करना चाहते है जिससे ज्यादा कुछ निकलेगा नहीं।"

श्री पाठक ने राज्य की कार्यप्रणाली में एक ही काम के लिए कई विभागों के गठन की आलोचना करते हुए आगे कहा कि "वर्तमान विभागीय ढांचा दो कार्य कर रहा है– पहला हमलोगों के जीवन को आसान बनाने की बजाय उनके लिए मुश्किलें खड़ी कर रहा है। जैसे– चरित्र प्रमाण पत्र, स्थायी प्रमाण पत्र पहले ग्राम प्रधान–तहसीलदार–एस.डी.एम. तब डी.एम. के पास जाने की प्रक्रिया करनी पड़ती है। इस प्रक्रिया में हमारे आदमियों का मनोबल टूटता है। उनको समझ नहीं आता की क्या करें? भ्रष्टाचार का मूल कारण तो यहां की बिगड़ी हुई व्यवस्था का ढांचा है। इसमें लोगों की कोई गलती नहीं है। यह भ्रष्टाचार का प्रश्न ही नहीं है प्रश्न तो भ्रम का है। हमारे लोगों को यह समझ नहीं आता की वह समस्या को कैसे टैकल करेंगे। उनको ब्लाक में जाकर राजस्व का एक आंकड़ा निकालना नहीं आता। क्यों नहीं आप ग्राम प्रधान को या ग्राम पंचायत को भूमि के अधिकार देते। जमीन हमारी और कानून ब्लॉक में, पटवारी, नोटरी के यहां।

मुझे नहीं लगता कि समाज की शिक्षा इत्यादि से भ्रष्टाचार में कोई कमी होगी। मैं भी शिक्षित हूं और आप भी। पर सबसे ज्यादा भ्रष्टाचार के चंगुल में हम ही है। आप चले जाइए – दार्मा, ब्यॉस, चौंदास वहां इस तरह के भ्रष्टाचार का ज्ञान नहीं है क्योंकि उनका इस तरह की भ्रष्ट व्यवस्था से इंटरऐक्शन ही बहुत कम है। भ्रष्टाचार वहां होता है जहां आपका सिस्टम के साथ इंटरएक्शन होता

है। तब मैं यह कहता हूं कि जब उत्तराखंड पर विचार हो तो इन दो बातों पर भी विचार हो कि आप व्यवस्था को कैसा बनाएंगे, उसको विकेंद्रीकरण का नाम देंगे या विकेंद्रीकरण की केंद्रीय मान्यताओं के तहत उसे चलाएंगे या उसकी कोई आधारभूत स्थानीय मान्यताएं चलायेंगे। दूसरी बात – व्यवस्थाओं को आसान बनाने की है जिससे कि भ्रष्टाचार समाप्त हो जाए इसमें आत्म ग्लानि की कोई बात नहीं है। हम सब लोग ठीक–ठाक है।

आज फोकस यह होना चाहिए कि सरकार को कैसे चलाया जाए। उस हेतु हमारा हस्तक्षेप हो अन्यथा सरकार इसे औपनिवेशिक तरीके से ही चलाएगी और इस औपनिवेशिक प्रवृत्ति से निजात पाने की जरूरत मुझे महसूस होती है।"

श्री तरूण जोशी ने कहा कि "जब हम उत्तराखंड की बात कर रहे हैं तो यह कौन सा उत्तराखंड है? हमारा एक उत्तराखंड तो उ.प्र. के पास, केंद्र सरकार के पास, यहां तक कि सुप्रीम कोर्ट के पास गिरवी पड़ा है। हमारा दूसरा उत्तराखंड विश्वबैंक, आई.एम.एफ. इत्यादि संस्थाओं की गिरफ्त में है। तीसरा उत्तराखंड है जिसे हमारे नौकरशाह चला रहे है। उन्हें जो फैसला लेना हो वे ले रहे हैं और हम उन निर्णयों को ढो रहे हैं। जहां तक राजनीतिक दलों एवं चिंतकों की बात हैं वे एक भ्रम में जी रहे हैं। जब तक राज्य नहीं बना था तब इस तरह की बहस होती थी कि, उत्तराखंड राज्य कैसा होगा? तब यह उत्तर होता था कि यदि एक बार यह मिल जाए तो हम इसे अपनी मन माफिक गढ़ लेंगे और अभी बातों से यह समझ पड़ रहा है कि जब नई सरकार वर्तमान सरकार से कार्यभार ले लेगी तो हम उत्तराखंड को अपनी मर्जी का गढ़ लेंगे। मुझे लगता है कि अब भी हम एक भ्रम में जी रहे हैं। क्षेत्रीय दल आज कहां है। हमारे प्राकृतिक संसाधन जैसे जल बहकर मैदान में, जंगल विश्व बैंक के कब्जे में, तब इनके खिलाफ आवाज उठाने वाला कोई नहीं है। और जो आवाज उठाते हैं तो उन्हें गैर राजनीतिक बताया जाता है। ऐसा क्यों? अगर राजनीतिक दलों की समझ में ये मुद्दे नहीं आते हैं या वह सत्ता प्राप्ति के बाद से सारी चीजों को ठीक कर लेंगे, ऐसा समझते है तो हमें कभी भी सफलता नहीं मिलेगी। और हम उ.प्र. का ही एक हिस्सा बने रहेंगे।"

सहित्यकार श्री पंकज विष्ट ने सवाल उठाया कि हम भारतीय संविधान के तहत कार्य करते हुए ही उत्तराखंड में कैसे अलग नीतियां लागू कर सकते हैं। उन्होंने कुछ उदाहरण देते हुए कहा कि "मुझे याद है जब कुछ वर्ष पूर्व उत्तराखण्ड आंदोलन बड़ी तेजी से चल रहा था तो नैनीताल से एक चिट्ठी आयी थी। जिसमें खड़ग सिंह बल्दिया जैसे लोगों की भी बात थी उसमें कहा गया था कि हमारे सपनों का उत्तराखंड कैसा होगा? मैंने उनको एक चिट्ठी लिखी थी जिस पर वो बहुत नाराज हुए थे। मैने पूछा था कि जो राज्य आप बनाने जा रहे हैं क्या वह भारतीय संविधान से बाहर होगा या उसकी सीमाओं के बाहर कुछ करने जा रहे है? मैं चूंकि लेखक हूं तो कल्पना का सहारा ज्यादा लेता हूं। 1990 में करीब एक माह हेतु मैं गंगटोक में था, दोस्त के पास। वे मुझे घुमाते थे, मैने देखा कि जगह–जगह झंडे लगे थे। उन दिनों वहां नर बहादुर भंडारी सी.एम. थे। दोस्त ने मुझसे कहा कि ये झंडे उन लोगों के है जिनको सरकार से कुछ न कुछ फायदे हुए है। लोन या ठेके लेकर। उन दिनों वहां ठेके का नियम था कि जाकर आप ठेके का आर्डर लाएं और बैंक से लोन लें। मेरा तात्पर्य यह है कि आप सिर्फ छोटे राज्य बनाकर समस्याओं का समाधान नहीं कर पाएंगे। भारत के जितने भी छोटे राज्य रहे है उनमें भ्रष्टाचार तुलनात्मकरूपेण ज्यादा है। यदि हम उत्तरांचल के संदर्भ में बात करें तो वहां तहलका जैसे कांड पर कांड खुलने लगेंगे।

एक बार जब मैं अपने गांव से लौट रहा था तो मुझे एक व्यक्ति मिले। उन्होंने बताया कि लोग भैंस का लोन लेते है और भैंस को मरी हुई दिखाने के लिए उसका कान काट लेते हैं। अर्थात जिस व्यवस्था में हम है वहां भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार है। और इस व्यवस्था से बाहर हम नई ब्यूरोक्रेसी को

बना नहीं सकते हैं। हमारी क्या औकात है? हम सब संविधान के अंतर्गत ही है। प्रसिद्ध वित्तमंत्री (बंगाल) अशोक मित्र ने एक बार कहा था कि राज्य कुछ नहीं एक 'डिगनिफाइड म्यूनिसिपेलिटी' है। ऐसे में यह कथन कि हमे सरकारी दस्तावेज हटा देने चाहिए और उनमें कम से कम इनवाल्व होना चाहिए – उदारीकरण भी यही तर्क दे रहा है – हटाइये–हटाइये सरकार हटाये, एजेंसीज को हटाइये। इससे कार्य बेहतर होगा। लेकिन शायद उससे भी उपचार नहीं होगा। मेरी समझानुसार सबसे बड़ी बात यह है कि आपको अपनी सांस्कृतिक परिस्थितियों और कारणों पर भी विचार करना चाहिए। जिनको ध्यान में रखे बगैर हम कोई भी परिवर्तन करने में सक्षम नहीं होंगे। ऐसा समाज जो अपनी गरीबी के बावजूद शारीरिक श्रम करने को तैयार न होता हो, उस स्थिति में लोगों को कैसे मोबिलाइज करेंगे? कैसे उन्हें वहां रहने हेतु आकर्षित करेंगे? और किन–किन बिंदुओं पर आप उनसे शारीरिक श्रम की भागीदारी हेतु कहेंगे।

अंत में, समस्या का समाधान सामान्य आदमी को इनवाल्व करना है। उसे राजनीतिक रूपेण समझदार बनाना है। जो कार्य लगभग आधी शताब्दी से होना बंद हो गया है। मासी (मेरा गांव) जहां लगभग एक–डेढ़ लाख रुपये की शराब बिक जाती है। अंततः जब तक एक्टिविस्ट कोशिश नहीं करेंगे तब तक कुछ नहीं कर पाएंगे। अंततः हमारा भविष्य, वर्तमान वृहत्तर भारतीय स्थितियों के साथ भी जुड़ा हुआ है।"

उत्तराखंड क्रांतिदल के उपाध्यक्ष **श्री जगदीश कापड़ी** ने सवाल उठाया कि भ्रष्टाचार से मुक्ति का सवाल काफी बड़ा है। "मुझे तो आशंका है कि क्या हम उत्तराखंड में भ्रष्टाचार को राष्ट्रीय औसत स्तर तक ला सकेंगे?" उन्होंने उत्तराखंड में भ्रष्टाचार के उदाहरण गिनाते हुए कहा– "कम से कम सात सौ योजनाएं हमारे पास है जो सिर्फ कागजों में है जिन पर अरबों रुपया लगाया गया है। हरिद्वार और अफजलगढ़ के बीच के क्षेत्र में 9 नाले पड़ते है, जिसमें हर साल रिपेयरिंग होती है लेकिन बारिश में वाहन घंटे–दो घंटे खड़े रहते है। पिछले सात सालों में कई हादसे भी हो चुके हैं। लेकिन वहां पुल इसलिए नहीं बनता है क्योंकि वहां पुल कागजों में बने हुए दिखाए गये है।

आज रूद्रपुर से लगभग तमाम कंपनिया अपना बोरिया–बिस्तर बांध कर जा रही है। हम पूछना चाहते है कि क्यों जा रही है जो सब्सिडी देकर बना गये है राज्य के बनने के बाद ऐसा क्या हो गया है वहां। उसमें भी भ्रष्टाचार का हाथ है। इन पर अरबों रुपयों बकाया है। अब तक कोई नहीं पूछता था, जो आता था उसको खुश कर देते थे। चूंकि उसके वसूली होने की संभावना है और उत्तरांचल उनके लिए विटल नहीं है इसीलिए वे इसको छोड़कर जा रहे हैं। 300 राइस मिलों को बंद करने की धमकी दी है।

एक वृद्धा आयी और कहने लगी कि 'राज्य वनजालोत हमले सोचिद्द कि कम से कम ऐटिट्यूड त बदललो लेकिन स्थिति अब और ले भयंकर ध्वेगैछ।' कुछ नहीं बदला है। और तो छोड़िये अस्थायी राजधानी देहरादून के नाम पर 86 करोड़ रुपये का खर्चा दिखाया गया है। पहले ही दिन से हम पूछ रहें है कि भैया बताओं कि इतना पैसा वहां लगा कहां हैं? उसके लिए अभी कमेटी गठित कर दी गयी है। तो यदि हम सचमुच भ्रष्टाचार से उत्तरांचल को मुक्त करना चाहते हैं तो इसके लिए एक सार्थक पहल वहां होनी चाहिए।

नया राज्य बनने की प्रक्रिया में लोकतंत्र का हनन हुआ है। पृथक राज्य विधेयक ही जनता के खिलाफ है। जिस तरह से अंतरिम सरकार के लिए विधान परिषद सदस्यों को विधान सभा का सदस्य बनाया गया है वह असंवैधानिक है। अंतरिम विधानसभा के उन विधायकों द्वारा जिनका कोई निर्वाचन क्षेत्र नहीं है, निर्वाचन क्षेत्र के विकास के लिए विधायक निधि दिया जाना भी आपत्तिजनक है।

श्री कापड़ी ने कांग्रेस को भी आड़े हाथों लेते हुए कहा कि सोनिया गांधी उत्तराखंड के जिलों में जाकर भाषण दे रही है कि भाजपा ने उत्तराखंड कों उ.प्र. का उपनिवेश बना दिया है। लेकिन उत्तराखंड की

जनता जानती है कि बगैर कांग्रेस के लोकसभा में पृथक राज्य विधेयक पास नहीं हो सकता था तब कांग्रेस ने कोई आवाज क्यों नहीं उठाई।"

जन अधिकार मंच के संयोजक **पी.सी. तिवारी** का कहना था कि "आज उत्तरांचल राज्य आ गया। इस बीच वैश्वीकरण आ गया। उत्तराखंड में 2/3 जंगल है। 51000 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में से 35000 वर्ग कि.मी. पर वन है। उस वनक्षेत्र पर, वहां की जमीन पर लुटेरों की नजर लगी हुई है। लेकिन मित्रों, हमारी आशा आम आदमी पर टिकी है। यह आम आदमी भ्रष्टाचार मुक्त कर देगा। लेकिन आम आदमी कहां खड़ा होता है? आम आदमी का कोई संगठन होता है। जो आम आदमी को एकजुट करता है। वरना आम आदमी कुछ नहीं होता है। मेरी सबसे बड़ी चिंता यही है कि देश में जो प्रवृत्तियां हैं शक्तिशाली का पिछलगू होने की। वही उत्तराखंड में भी हो रहा है। जो सुरा से पंचतारा होटल खड़े कर दे वह हमारा नेता होने जा रहा है। हमारे ब्लाक प्रमुख शराब के धंधों में लिप्त हैं। अल्मोंड़े का जिला पंचायत अध्यक्ष, हत्या के मामले में आजीवन कारावास की सजा प्राप्त है। भाजपा ने उसे चुनाव लड़ाया और कांग्रेस ने उसे जिताया। जब तक समाज में अच्छा कार्यकर्ता पुरस्कृत नहीं होगा तब तक कुछ नहीं होगा। डा. ललित पांडे बता रहे थे कि कुछ लोगों ने कई वर्षों कुछ अच्छा कार्य किया आज स्वजल में जा रहे हैं। लोग उनकी आलोचना कर रहे हैं, तो मैने कहा वे व्यक्ति जिन्होंने 25–30 वर्ष इस देश में, देश के लिए कार्य किया और आज वे स्वजल में चले जायें तो गलती किसकी है, क्या हमारे समाज ने उन्हे कभी सम्मान दिया?

हम सबको मिलकर उत्तराखंड में कहना होगा कि धन की शक्ति नहीं, वरन विचार की शक्ति को मानिए। लूट केवल प्राकृतिक संसाधनों की ही नहीं, वरन आपके कार्यों की लूट भी होती है। भारत में किसी के कामों पर ठप्पा किसी और का होता है।

हम यह कहना चाहते हैं उत्तराखंड में भ्रष्टाचार पूरी तरह फैला हुआ है। और यह भ्रष्टाचार आम जनता नहीं करती। वह तो शिकार है इस भ्रष्टाचार की। उ.प्र. के मुख्यमंत्री के पास 2 ओ.एस.डी. है जबकि हमारा मुख्यमंत्री 7 ओ.एस.डीएस. से काम ले रहा है। सारे मंत्रियों के पास कई–कई ओ.एस. डीएस. है। 7 नवंबर की रात को हमने देहरादून में खबरदार रैली की थी। उसमें हमने कहा था कि नया राज्य है इसमें फलां–फलां कार्य न करना। उत्तराखंड में मंत्रियों की मुफ्तखोरी खत्म हो, प्रोटोकाल व्यवस्था खत्म हो, लेकिन हम कुछ नहीं कर पा रहे है। पिछले 35 वर्षों से हमारे साथियों की जनआंदोलन में भागीदारी है लेकिन वो सब क्या कर पाये उत्तराखंड की पूरी जनता (खासतौर पर्वतीय क्षेत्र की) स्वयं को ठगा सा महसूस कर रही है। जो मंत्री 8–10 गाड़ियों के काफिले में जा रहा है वो जनता के सपनों का खून कर रहा है। लूट का उदाहरण देखिए– लखनऊ से 188 कर्मचारी देहरादून आये। और उत्तराखंडी जिलों से 486 गये। जो 188 कर्मचारियों को हाउसरेंट मिल रहा है, वह साढ़े सात हजार से आठ हजार तक है। 486 कर्मियों को कुछ नहीं। इतनी विसंगतियां हैं।

हम कई मायनों में सिर्फ नाम के क्षेत्रीय है और अधिकांशतः राष्ट्रीय हितों की रक्षा कर रहे हैं। शराब माफियाओं के खिलाफ संघर्ष में कुलवंत सिंह ऐंड कं. समानांतर सरकार बनाती है। उत्तरांचल में 36 पैसा लागत आती है बिजली पैदा करने में। हम 1.62 रु. में उत्तर प्रदेश से खरीद रहे हैं। हमारे यहां विकल्पधारी शिक्षक है जो उ.प्र. जाना चाहते हैं, पर उ.प्र. लेना नहीं चाहता। अब ये शिक्षक पढ़ाते नहीं है पर तनख्वाह जरूर पाते हैं। ऐसी स्थिति में मैं यह कहना चाहता हूं कि जब भाजपा के साथ, हमारे क्षेत्रीय नेता भी हमारे खिलाफ हो तों क्या कीजै। हम सबको पुनर्विचार करना होगा। साथ मिल बैठकर राजनीतिक हस्तक्षेप करना होगा। हां हम जानते है कि बड़ा परिवर्तन नहीं

होने वाला है मगर यदि हम निर्णायक स्थिति में पहुंचते हैं तो सामाजिक सांस्कृतिक उद्देश्यों को तो न भूले।

नये कानून भी चिंता का विषय हैं– वनपंचायत नियमावली। अधिकारी कहते है हमने कानून अच्छे बनाये हुए है। हम कहते हैं तुम कौन होते हो अच्छा–बुरा तय करने वाले? यह निर्णय हमारे हाथ है क्योंकि हम तुम्हें अपना भाग्य विधाता नहीं बनाना चाहते। बहुत अच्छा अवसर था उत्तराखंड बनने के बाद नव परिवर्तन का। लेकिन वर्तमान सरकार ने सब चौपट कर दिया है।

ग्लोबलाइजेशन और हमारे राज्य का चरित्र : कितनी पारदर्शिता? कितनी भागीदारी? कितना लोकोन्मुखी? विषय पर बोलते हुए प्रो. अरूण कुमार ने विस्तार पूर्वक कहा कि "मैने राष्ट्रीय संविधान समीक्षा आयोग (नेशनल कमीशन फार कंस्टीट्यूशन रिव्यू) की उपसमिति को अपना एक पर्चा "भारत में शासन एवं लोक प्रशासन : एक समीक्षात्मक दृष्टि" (पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ऐंड गवर्नेंस इन इंडिया : ए क्रिटिकल लुक), दिया था, मैं उपसमिति का एक सदस्य भी हूं।

इसमें शुरू में मैं दो सवाल उठाना चाहता हूं। पहला, देश में जो चीज सबको दिखाई देती हो उस पर कुछ नहीं होता। जैसे, सभी लोग शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी चाहते हैं, लेकिन मिलता नहीं। साक्षरता 60 प्रतिशत तक पहुंच गयी है पर प्रभावी साक्षरता 10 प्रतिशत लोगों में ही है। दूसरा, भूमंडलीकरण को समझना होगा। विश्व व्यापार संगठन (वर्ल्ड ट्रेड आर्गनाइजेशन– डब्ल्यू. टी. ओ.) वास्तव में क्या कर रहा है, यह जानना होगा। देश में 10 लाख लोगों को भी पता नहीं कि वो डब्ल्यू. टी. ओ. में क्या हो रहा है। लेकिन डब्ल्यू. टी. ओ. में हमारे आगामी 50 वर्षों की आर्थिक नीति तय हो रही है।

मेरा मानना है कि भूमंडलीकरण 250 वर्षों पुराना है और सन् 1990–91 से जो हो रहा है, जैसे डंकल वगैरह, वह भूमंडलीकरण का एक चरण मात्र है। यदि हम देखें तो एक पूरा जमाना बदल गया है। हमारा बैठना, उठना, खाना पिछले 250 वर्षों में पूरा बदल गया है। पहले दातून, अब टूथ पेस्ट, पहले यदि लकड़ी से खाना बनता था तो अब गैस आ गयी है, पंखे, बिजली मोटर, रेल आदि। मेरे पिताजी बताते थे कि गांव में सिर्फ दो समय खाना बनाते थे लेकिन अब 3–4 बार खाना खाते हैं। पहले सूरज ढलते ही सोना, सूरज उगते ही उठना, काम पर जाना...। लेकिन इस 250 वर्षों के बदलाव में कितना अंश है जो भारत का अपना योगदान है? रोजमर्रा प्रयोग की कोई भी ऐसी चीज नहीं दिखती जो भारत ने दी हो। प्रश्न यह है कि हमारी सृजनशीलता और गतिशीलता कहां मर गयी? इस भूमंडलीकरण के चलते हम खुद बहुत योग नही दे पा रहे है। क्योंकि यह एकतरफा भूमंडलीकरण है जब तक यह दोतरफा नहीं होता, हम इसकी दिशा निर्धारित नहीं कर पायेंगे।

हमारा प्रशासन अंग्रेजों ने शुरू किया। 1800 तक आते–आते हमारे गुरूकुल एवं मदरसे खत्म हो गये। उन्होंने विश्वविद्यालय दिये और हमारे दिमागों मे मैकॉले उतार दिया गया कि हमें क्लर्क्स पैदा करने है विचारक नहीं।

1967 तक आते–आते गणमान्यों में यही सोच था कि यूरोपीय आधुनिकता की तरफ जाएंगे, वहां जो रास्ता दिखा वह था नियोजन का, जो यूरोपीय आधुनिकता का हिस्सा था और इसीलिए हमने उसे स्वीकारा। सन 70–80 के दशक में जब यह रफ्तार क्षीण हो रही थी तब हमारे पास कोई दूसरा रास्ता नहीं था। फिर हमने देखा कि अब यूरोप बाजार की तरफ बढ़ रहा है तब धीरे–धीरे हमने भी बाजार का रूख किया – वो चाहे राजीव गांधी ने कहा हो या 1991 के बाद विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई. एम. एफ.) का मॉडल स्वीकार करना हो। इस सब में हमारी भूमिका, हमारी सोच नहीं रही है। जितनी भी तकनॉलाजी की, सृजनशीलता की बात है, पिछले 250 वर्षों में हम उसे आयात ही करते रहे हैं विशेषकर 1947 के बाद। तकनॉलाजी के नाम पर भारत में विकास नहीं हो रहा है क्योंकि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई. आई. टी.) में हमारे जो श्रेष्ठ विद्यार्थी होते हैं वे या तो सीधे–सीधे विदेश चले जाते हैं या फिर प्रबंधन में चले जाते हैं।

धीरे–धीरे विश्व बैंक ने जो मॉडल दिया वो हमने अपना लिया। जब मैकनमारा 1968 में विश्व बैंक के अध्यक्ष बने तब वियतनाम युद्ध चल रहा था। उन्होंने कहा कि कम्युनिज्म बढ़ रहा है और वियतनाम गरीबी से मिट जाएगा, इसके बाद थाईलैंड, कम्बोडिया और फिर भारत भी गरीबी से बिक जाएगा और कम्युनिस्ट बन जाएगा। तो विकास क्या होना चाहिए? अतः गरीबी को हटाया जाना चाहिए इसीलिए हमने गरीबी हटाने वाला मॉडल स्वीकारा।

फिर 1972 में वियतनाम युद्ध खत्म हो गया और ऐसा लगा कि अब ब्राजीलियन मॉडल ठीक रहेगा। अब खुली अर्थव्यवस्था वाला ब्राजीलियन मॉडल था पर वह भी असफल हो गया क्योंकि विदेशी कर्जे का संकट बढ़ा। इसके बाद यह मॉडल ब्राजील, अर्जेंटीना, मेक्सिको वगैरह सब देशों में असफल हो गया। तब विश्व बैंक को लगा कि यह मॉडल ठीक नहीं है। तब नव औद्योगिकरण वाले दक्षिण पूर्व एशियाई देशों को मॉडल बना लिया गया और सब उसी मॉडल पर चलने लगे। लेकिन 1997 में जब वहां आर्थिक संकट हुआ तो लगा कि यह मॉडल भी ठीक नहीं है, तो और कोई मॉडल चला दे।

हमारे यहां भी हम मॉडल के पीछे चलते रहते हैं। वहां से नया मॉडल आ जाता है और हम उस मॉडल को अपना लेते हैं। हमें जब वृद्धि दर (रेट ऑफ ग्रोथ) थोड़ी बढ़ानी होती है तो हम **सोलो** को पढ़ा देते है या विश्व बैंक का डेवलपमेंट–मॉडल ले लेते है। लोक वित्त (पब्लिक फाइनांस) करना होता है तो विश्व बैंक का मॉडल ले लिया या और किसी का और मॉडल ले लिया। लेकिन हमारे यहां क्या होना चाहिए, इस बारे में हमारी अपनी कोई मौलिक सोच या समझ नहीं है। वृद्धि दर, विकास, लोक वित्त और दूसरे आर्थिक विषय हैं या हमारे यहां किस तरह का समाजशास्त्र होना चाहिए, यह भी पश्चिम से लिया गया है। जैसे जो समाजशास्त्र में मार्क्स, वेबर, डर्खिम आदि को पढ़ा लिया जाता हैं। लेकिन इसमें हमारा अपना क्या हैं? तो मेरा यह मानना है कि यह एकतरफा भूमंडलीकरण है, विचारो के स्तर पर, तकनॉलाजी के स्तर पर और आज हम जो कर रहे हैं उसके हरेक स्तर पर।

हम अपनी स्थितियों को खुद देख कर, उसमें हमें क्या करना है, इस दृष्टि से काम नहीं कर रहे हैं। मेरा मानना है कि यह जो एकतरफा भूमंडलीकरण है, हमें उसे समझना होगा कि यह एकतरफा भूमंडलीकरण क्या है? इसके लिए हमें समझना पड़ेगा कि बाजार (मार्केट) क्या है? बाजार एक ऐसी संस्था है जहां पर वस्तुओ व सेवाओं का आदान–प्रदान होता है। आप पैसा देते है, आपको सामान एवं सेवाएं (गुड्स ऐंड सर्विसेज) मिलती हैं। तो बाजार एक ऐसी संस्था है जहां पर पैसा एक तरफ जाता है और दूसरी तरफ इसके बदले आपको सामान मिलता है। इसके अलावा इस बाजार नाम की संस्था का और कोई मूल्य (वैल्यू) नहीं है।

तो बाजार में आखिर क्या चीज मायने रखती है? यह है आपके खरीदने की क्षमता (पर्चेजिंग पावर)। आपकी खरीदने की क्षमता कितनी है? इसको सुमेलसन साहब ने नाम दिया डॉलर वोट। मतलब आपकी जेब में अगर दस लाख डॉलर है तो आपके दस लाख वोट हैं। आपकी जेब में अगर एक डॉलर है तो आपका एक वोट है। तो बाजार एक ऐसी लोकतांत्रिक संस्था है जहां पर इसका कोई मतलब नहीं है कि आप औरत है या आदमी, बच्चे है या बूढ़े। इसमें ये मूल्य नहीं चलते। बाजार सिर्फ आपकी खरीदने की क्षमता के बारे में ही जानना चाहता है। आपकी जितनी खरीदने की क्षमता है उसी के अनुपात में बाजार में आपका वोट है औरे आप जो चाहेंगे वह होगा।

इसे एक उदाहरण से समझे। अगर आज देखें तो उत्तरी अमेरिका में प्रति व्यक्ति आय (पर कैपिटा इन्कम) करीब 35,000 डॉलर है जबकि भारत में प्रति व्यक्ति आय करीब 350 या 400 डॉलर है। तो मोटे तौर पर एक भारतीय और एक उत्तरी अमेरिकी नागरिक का अनुपात 1:80 है। यानी बाजार में एक उत्तरी अमेरिकी नागरिक 80 भारतीयों के बराबर है। इसलिए बाजार में वह उत्पादन होगा जो उत्तरी अमेरिका का एक आदमी चाहेगा, न कि जो भारत का एक आदमी चाहेगा। तो इस तरह बाजार से गरीब और ज्यादा गरीब हो रहे हैं। तो इसके चलते दुनिया में अमीर–गरीब के बीच दूरी बढ़ने की प्रक्रिया चल रही है। जो अमीर है वह और अमीर हो जाता है तथा जो गरीब है वह और गरीब हो जाता हैं। इस तरह गरीब वहीं का वहीं बना रहता है। इस प्रक्रिया के कुछ अपवाद भी है लेकिन यह इस पर निर्भर करता है कि राज्य की नीतियां किस तरह की हैं। लेकिन मोटे तौर पर अमीर–गरीब के बीच दूरी बढ़ने की प्रक्रिया जारी है।

आज दुनिया के स्तर पर जो पूंजी का स्वामित्व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ में है। और जो बड़े समृद्ध देश हैं बहुराष्ट्रीय कंपनियां उनके कब्जे में हैं। 95 प्रतिशत बहुराष्ट्रीय कंपनियां है वह विकसित देशों की हैं। केवल 5 प्रतिशत छोटी बहुराष्ट्रीय कंपनियां ही विकासशील देशों की हैं। ये 5 प्रतिशत भी, विकासशील देशों में बड़े देशों की हैं जैसे चीन, ब्राजील आदि, और छोटे राष्ट्रों की तो कोई ऐसी बहुराष्ट्रीय कंपनियां है ही नहीं। इस तरह पूंजी का स्वामित्व उनके पास है और किस वस्तु का उत्पादन होगा, इसकी स्पष्टतः भी उनके पास है। तो इस तरह हम देखते है कि राष्ट्रों के स्तर पर जो बड़े समृद्ध राष्ट्र हैं दुनियां के बाजारों में उनका प्रभुत्व हैं। जो छोटे राष्ट्र है उनका प्रभुत्व नहीं हुआ है, वे पिछड़े हुए हैं और पिछड़े जा रहे हैं।

आज की तकनॉलाजी और उस तकनॉलाजी के पैटेंट्स पर संपूर्ण नियंत्रण आज विकसित राष्ट्रों के पास है। पर अगर राष्ट्रों के बीच में असमानता है तो राष्ट्र के अंदर भी कुछ समृद्ध क्षेत्र हैं, तो कुछ पिछड़े हुए क्षेत्र हैं और उनके बीच में भी असमानता है। भारत में देंखे तो 'बीमारू' (बिहार, एम.पी., राजस्थान, यू.पी.) कहे जाने वाले प्रदेशों की वृद्धि–दर सन् 1990 के बाद करीब 2.5 प्रतिशत रही है और जो विकसित राज्य है वे पश्चिम और दक्षिण के हैं। इन प्रदेशों की वृद्धि–दर 7.5 या 8 प्रतिशत है। भारत में भी 'बीमारू' और विकसित राज्यों के बीच में जो असमानता है वह लगातार बढ़ रही है। इस तरह से गरीब के गरीबतर (मार्जिनलाइजेशन आफ द मार्जिनल्स) होने की प्रक्रिया तेजी से बढ़ रही है।

जैसे कि हम महाराष्ट्र को देखे। महाराष्ट्र का मतलब यह नहीं हैं कि कोल्हापुर, सोलापुर, पुणे और मुंबई सब एक समान हैं। बाजार के लिए महाराष्ट्र का मतलब है, पूना–बंबई पट्टी। तो पूंजी कहां जाएगी? पूंजी तो बंबई–पूना पट्टी में ही जाएगी। उसी तरह से यू. पी. का क्या मतलब है? यू. पी. का मतलब यह नहीं है कि बांदा में कोई पूंजी निवेश होगा। पूंजी निवेश कहां होगा? पूंजी निवेश होगा नोएडा में, दिल्ली में, जहां पूंजी है, बुनियादी सुविधाएं हैं, और बाकी सब सुविधाए भी हैं। इसलिए इन जगहों पर पूंजी निवेश की सघनता ज्यादा है।

तो इस तरह से राज्यों में असमानता बढ़ रही है। हम देखते है कि बाजारीकरण की प्रक्रिया में हर स्तर पर (जैसे आय, समृद्धि आदि) असमानता बढ़ रही है। तो मेरा यह मानना है कि बाजार असमानता को बढ़ाता है जब तक कि वहां पर राज्य का हस्तक्षेप उस तरह का न हो जो इन असमानताओं को दूर करे। इस तरह यह तथ्य सामने आता है कि अगर

आप बाजार की कार्यविधि को खुला छोड़ दें तो यह असमानता बढ़ाता है। आखिर खुले बाजार का सिद्धांत क्या है? इसका सिद्धांत है – उपभोक्ता की सार्वभौमिकता व सर्वोच्चता। इसका मतलब है कि जो उपभोक्ता करना चाहता है वही सही है। और इसका दूसरा सिद्धांत है कि जितना अधिक है उतना ही बेहतर है (मोर इज बेटर)। मतलब आप जितना ज्यादा उपभोग करेंगे, उतना ही बेहतर होंगे। और आपके **वेलफेअर** में उतनी ही बढ़ोतरी होगी। तो 'अधिक ही बेहतर है', उपभोगवाद को रेखांकित करता है। आप जितनी खपत करेंगे उतने ही ज्यादा बेहतर माने जाएंगे।

उपभोक्ता की सर्वोच्चता का मतलब है जिसके पास ज्यादा खरीद क्षमता है, वह जो उपभोग करना चाहता है वही ज्यादा ऐच्छिक है। अगर हमारे ऊपर बाहर के बाजारों का दबाव है तो हम लोगों ने मार्केट खोलना शुरू कर दिया, 1990–91 के बाद ज्यादा से ज्यादा। अगर बाहर फूलों, साग–सब्जियों, **सेरीकल्चर** आदि की जरूरत है तो यहां पहले उसका उत्पादन होगा। और फिर इसके बाद ज्वार, बाजरा आदि का उत्पादन होगा। इस भूमंडलीकरण के चलते, सरकार की जो नीति है उसमें अंतर्राष्ट्रीय पूंजी जो चाहती है वही पूरी अर्थव्यवस्था में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। यहां के लोग जो चाहते है उसका उतना महत्व नहीं है।

जैसे, यहां के लोग रोजगार चाहते हैं लेकिन रोजगार बढ़ाने के लिए बजट में घाटा करना पड़ेगा। पर ऐसा करने से विदेशी संस्थागत निवेशक (फारेन इंस्टीट्यूशनल इनवेस्टर्स – एफ.आई.आई.एस.) और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (फॉरेन डायरेक्ट इन्वेस्टमेंट – एफ.डी.आई.) नाराज होंगे। इस कारण सरकार बजट में घाटा ज्यादा नहीं बढ़ाना चाहती। आपको पहलें उनकी बात सुननी पड़ेगी और जो वह चाहते है वह करना पड़ेगा। उसके बाद ही देश की जनता जो चाहती है वह आप करेंगे। तो अगर **इनफ्लेशन** होता है तो आपको वह सहन करना पड़ेगा क्योंकि अगर आप बाजार में ज्यादा अनाज देंगे तो उससे क्या होगा – बजट का घाटा बढ़ जाएगा। बजट का घाटा बढ़ने से विदेशी संस्थागत निवेशक है और प्रत्यक्ष विदेशी निवेशक नाराज हो जाएंगे। 'मूडीज' आपको अपनी सूची में नीचे खिसका देंगे (मूडीज एक अंतर्राष्ट्रीय क्रेडिट रेटिंग संस्था है जो राष्ट्रों को उनकी अर्थव्यवस्था की मजबूती के आधार पर सूचीबद्ध करती है। इस सूची में निचले स्थान पर रखे जाने वाले देशों में विदेशी पूंजी निवेश आना कम हो जाता है)।

इसलिए आज खुली नीतियों के चलते हुए, भूमंडलीकरण के चलते हुए, बाजार जो चाहता है वहीं हमें करना पड़ेगा। तो बाजार में राज्य का रणनीतिक रूप से पिछे हटना (स्ट्रेटजिक रिट्रीट आफ द स्टेट) जारी है। अब आप सोचेंगे कि बाजार अगर इतना प्रभावशाली है कि इसके चलते ही सारी नीतियां निर्धारित हो रही हैं, तो क्या बाजार हर जगह कामयाब हो जाता है? **निओ–क्लासिकल** सिद्धांत हमें बताता है कि बाजार बहुत जगह असफल होता है और वह जगह–जगह कामयाब नहीं होता है।

बाजार की असफलता कई तरह की होती है। जैसे सार्वजनिक वस्तुओं का आदान–प्रदान केवल बाजार में ही किया जा सकता है, बाजार के बाहर नहीं। पर बुनियादी जरूरतें (मेरिट वांट्स) मसलन शिक्षा, जनस्वास्थ्य, पेयजल हैं और इनके बारे में प्रख्यात अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन जी ने भी यही कहा है कि बाजार ये जरूरते पूरी नहीं कर सकता। खासकर

भारत जैसे देश में जहां 75 प्रतिशत जनता गरीब है, उनको बाजार से यह नहीं मिलने वाला है। इसलिए गरीबी की रेखा चाहे जिस तरह से भी आंकी जाए, 75 प्रतिशत जनता जो गरीब है (सरकार आज कह रही है कि 26 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं), वह गरीब ही रहेगी। उसको बाजार से फायदा नहीं होगा। जिसकी आमदनी पांच रुपये या दस रुपये है, वह अमीर नहीं बन जाता है, वह गरीब ही रहता हैं।

और अंतर्राष्ट्रीय मजबूरियों से यदि आप चलें तो देश के ये 75 प्रतिशत गरीब लोग बाजार में मुनाफा नहीं दे सकते। निजी क्षेत्र के लोग जो वहां शिक्षा वगैरह देना चाहते हैं, वह उनको आवश्यक मदद नहीं करेंगे। इसलिए पिछली सदी में सब जगहों पर, चाहें वह विकसित देश हों या विकासशील देश हों, जब बाजार की असफलता को पहचाना गया तो हर जगह राज्य का हस्तक्षेप बढ़ा।

1913 में ओ.ई.सी.डी. (*आर्गनाइजेशन आफ इकोनामिक कोआपरेशन ऐंड डेवलपमेंट*) देशों में, सरकार का जो खर्चा था वह सकल घरेलू उत्पाद (ग्रॉस डोमेस्टिक प्रोडक्ट – जी.डी.पी.) का 9 प्रतिशत था। सन 1995 तक यह बढ़ते–बढ़ते 48 प्रतिशत हो गया। ओ.ई.सी.डी. देशों की तरह, विकासशील देशों, दक्षिण पूर्व एशियाई व प्रशांत देशों, लातिनी अमेरिकन देशों, सभी जगहों पर सन 1960 से 1974 तक हर जगह राज्य का हस्तक्षेप बढ़ा है। क्योंकि यह माना गया कि बाजार सारी चीजें कुशलतापूर्वक प्रदाय नहीं करा सकता और इसी राज्य का हस्तक्षेप बहुत जरूरी है। लेकिन जो नयी आर्थिक नीति और भूमंडलीकरण के इस दौर में यह माना जाने लगा है कि बाजार आगे बढ़ेगा और राज्य पीछे हटेगा।

राज्य के पीछे हटने की इस रणनीति के कारण ही आम आदमी की जरूरतें व उनकी तरफ और भी कम ध्यान दिया जा रहा हैं और बजट घाटे के नाम पर सरकार बजट में जो खर्च करती रहती है वह बहुत कम होता जा रहा है। तो हमको यह समझना पड़ेगा कि हमारी अर्थव्यवस्था पर भूमंडलीकरण का कितना असर हो रहा है, बाजार का कितना असर हो रहा है। इसका हमारे रहन–सहन पर, राज्य की संरचना पर कितना असर हो रहा है। इससे कितना विखराव (**डिफ्रेंशिएशन**) हो रहा है। अब यह मान लिया गया है कि राज्य नहीं दे पायेगा, तो राज्य पीछे हट जाए। निजी क्षेत्र आ जाए, गैर सरकारी संगठन आ जाएं और इस तरह से काम चलाया जाए। अर्थात राज्य का आम आदमी के प्रति जो दायित्व है, वह यदि नहीं करता, तो ठीक है, क्योंकि राज्य खुद प्रदाय नहीं कर पा रहा है तो निजी पहल और गैर सरकारी संगठन ही काम करें। यह एक चीज है जो हमें समझनी होगी।

तो मेरा यह मानना है कि ब्रिटेन ने हमें जो प्रशासन दिया, शासन दिया, वह काफी हद तक साफ–सुथरा था। इसके पीछे अगर आप आंकड़े देखे तो समाज में जो अनियमितताएं/गैरकानूनी चीजें है, उनको कैसे मापेंगे? उनमें से एक है देश की काले धन की अर्थव्यवस्था। कालडोर ने इंग्लैंड से भारत आकर 1955–56 में एक अध्ययन किया। उसने बताया कि देश में 2 प्रतिशत से 3 प्रतिशत काला धन है। यानी की जो अनियमितताएं/गैरकानूनी चीजें है वह 1955–56 में 2 प्रतिशत से 3 प्रतिशत थी। इसके बाद 1969 में वांचु कमिटी आई। उसके अनुसार यह बढ़कर करीब 7 प्रतिशत हो गया। यानी सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 7 प्रतिशत काला धन था। फिर 1980 में एक अध्ययन नेशनल इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक फाइनांस ने किया। इसने कहा कि यह बढ़कर 18 प्रतिशत हो गया है। फिर मैंने काले धन की अर्थव्यवस्था पर एक किताब लिखी। उसमें मैंने लिखा है

कि 1995 तक यह बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया है। इसमें 8 प्रतिशत तो बिल्कुल गैरकानूनी क्रिया–कलापों से आ रहा हैं जैसे, माफिआ से, नशीली दवाओं से, हवाला (**मनी लांडरिंग**) से, सोने की स्मगलिंग आदि।

बाकी 32 प्रतिशत जो गैरकानूनी है, वह कानूनी क्रिया–कलापों से आ रहा है। जैसे भवन निर्माण, औद्योगिक उत्पादन, जिनको हम बिल्कुल कानूनी क्रिया–कलाप मानते है। यानी हमारे समाज में जो गैरकानूनी काम हैं, मतलब जो लोग कानूनी ढांचे के बाहर काम कर रहे हैं उससे जो काले धन की कमाई हो रही है, वह 2 प्रतिशत से बढ़कर धीरे–धीरे आज 40 प्रतिशत हो गई है। यानी समाज में गैरकानूनी काम बहुत तेजी से बढ़े। इसके पीछे भ्रष्टाचार एक कारण है। मैं यह कहना चाहता हूं कि अंग्रेजों ने हमें जो शासन और लोक प्रशासन दिया वह अपेक्षाकृत बहुत साफ था। अंग्रेजो ने हमें जो दिया, उसके पीछे एक बड़ा स्पष्ट उद्देश्य था कि जनता को कैसे नियंत्रण में रखा जाए।

अंग्रेजो ने जो पुलिस यहां पर रखी थी, वह एक माई–बाप थी, अंग्रेजो के नियंत्रण का एक औजार। उन्होंने जो प्रशासन स्थापित किया वह भी नियंत्रण का एक औजार था। जिले का जो प्रमुख था वह **रिवेन्यू कलेक्टर** था। उसका काम विकास करने का नहीं था। उसका काम था कि कैसे **रिवेन्यू** इकट्ठा किया जाए। तो हमारी जो नौकरशाही है, नीति है, जो न्यायपालिका है, वह एक बड़ा कुलीन ढांचा था। उन्होंने ऐसा ढांचा इसलिए बनाया क्योंकि वह सीधे अंग्रेजों के प्रति जवाबदेह रहे। वह भारत में भारतीय नागरिकों के प्रति जवाबदेह नहीं था। जबकि ब्रिटेन में जो नौकरशाही है, जो पुलिस है, जो न्यायपालिका है, वह वहां के लोगों के प्रति जवाबदेह है।

मैंने यह तब देखा जब मैं इंग्लैंड गया था और जब मैं भौतिक शास्त्र में पी.एच.डी. करने के लिए अमेरिका जा रहा था, हालांकि बाद में मैंने विषय बदल कर अर्थशास्त्र ले लिया। वहां मैंने देखा कि यदि आप नौकरशाही से संपर्क करें, तो वह आप को 'सर' कह के बुलाते थे। मैं तो चौक गया। मैं तो केवल एक विद्यार्थी था। इंग्लैंड में पुलिसवाला आपको 'सर' कह कर बुलाता हैं। भारत में यदि आप किसी थाने में जाएं तो आप उसको 'सर' कह कर बुलाते हैं और वह आपको डंडा लगाता है। तो ये जो एक नियंत्रण के औजार हैं, नौकरशाही, प्रशासन, न्यायपालिका, उसका लोगों से कोई लेना–देना नहीं है। वह लोगों के प्रति जवाबदेह नहीं है।

लेकिन 1947 में यह बदला। कुछ **पर्सपेक्टिव** के अंदर ब्रिटिश ने हमें स्वच्छ प्रशासन और शासन दिया। तो सवाल यह है कि अगर शासन और प्रशासन हमें करना है तो उसका एक **पर्सपेक्टिव** होना चाहिए। यह जो हमारे प्रशासन का जो **पर्सपेक्टिव** रहा, उसका लोगों से लेना–देना नहीं था। लोगों के प्रति जवाबदेही नहीं थी। और जो हमारा कुलीन वर्ग है, वो 1947 में भी यूरोपियन माडल के माध्यम से भूमंडलीकरण से जुड़ना चाहता था, और इसके बाद भी उसकी यही नीति रहीं। इसका क्या मतलब है? कुलीन वर्ग में जो 3 प्रतिशत लोग आते थे, उनकी आय सर्वाधिक है, वे यूरोप से जुड़ना चाहते हैं।

हमारा जो कुलीन वर्ग है, जो शासकगण हैं, उनका आज लोगों के साथ भावनात्मक जुड़ाव नहीं है। उनके लिए विकास का मतलब और कुछ है। उनके विकास का मतलब है विश्वव्यापी कुलीनों के साथ जुड़ना, विश्वव्यापी कुलीनों का हिस्सा बन जाना। पेंटियम फोर

की कम्प्यूटर चिप जब विदेशी बाजारों में आती है तो तुरंत तीन महीने में भारत में भी वह आ जाती है। मर्सिडिज कार का नवीनतम मॉडल वहां के बाजारों में आता है तो भारत में भी तुरंत आ जाता है। तो विकास का यह मतलब है।

उनके लिए उन्नति का क्या मतलब है? यूरोप में छुट्टियां बिताना, अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका भेजना, स्वास्थ्य की समस्या हो तो बोस्टन चले जाना – उनके लिए यही उन्नति है। उनके लिए उन्नति का मतलब है यूरोप, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, सिंगापुर से जुड़ना। उनके लिए यह उन्नति का मतलब यह नहीं है कि आपके पिछड़े इलाके में एक नल और लग जाए। बस्तर में एक सड़क बन जाए, एक स्कूल और बन जाए। भूमंडलीकरण के दौर में, हमारे कुलीन वर्ग का भावनात्मक जुड़ाव, भारत की जनता से नही बल्कि बाहर के देशों से है। वे अपने को भारतीय जनता के प्रति जवाबदेह नहीं मानते। तो नयी आर्थिक नीति के चलते इस तरह की चीजें हो रही है कि आज कोई विदेशी बैंक, प्राइवेट बैंक आ जाए, तो वह कार्यकुशल है। अनाज के लिए लोगों के पास पैसा नहीं है 540 लाख टन अनाज के भंडार भरे पड़े हैं, लेकिन 30 प्रतिशत लोगों के पास अनाज खरीदने के लिए पर्याप्त साधन ही नहीं है। वह अनाज नहीं खरीद पा रहे है। यह **अप्टीमम** है और इसको आर्थिक रूप से कार्यकुशलता माना जा रहा है।

कार्यकुशलता यह है कि कोई भी विदेशी आ जाए, चाहे वह विदेशी बैंक हो, चाहे और कुछ आ जाए, सब एक बराबर हैं। कोई अनिवार्य/जरूरी चीज नहीं है, कोई गैर जरूरी चीज नहीं है। नयी आर्थिक नीतियों के चलते कार्यकुशलता यह है कि उपभोक्ता ने जो मांग की, वहीं होना चाहिए। उपभोक्ता ही सर्वोच्च है। यही बाजार का सिद्धांत है। जो उपभोक्ता चाहता है वहीं होना चाहिए।

इसमें लोग कहां है? लोग इसमें कहीं नहीं आते। बल्कि बाजार में हाशिए पर धकेले जाने की एक प्रक्रिया है। पश्चिम में स्वायत्त संस्थाओं का एक विकास हुआ, जैसे विश्वविद्यालय। वहां 600–700 सालों से विश्वविद्यालय चल रहे है, जैसे कि कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, आदि। हमारे यहां 1950 के बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय पूरी तरह ध्वस्त हो चुका है। बंबई विश्वविद्यालय देखिए, चेन्नई विश्वविद्यालय देखिए, कलकत्ता विश्वविद्यालय देखिए, दिल्ली में जे. एन. यू. खड़ा किया गया, ये सभी गिरावट पर है, 1980 के बाद। क्या कारण है कि हम अपनी संस्थाओं को चला नहीं पा रहे है? क्या वजह है कि हमारी संस्थाएं इतनी जल्दी ध्वस्त हो जाती है? जबकि यूरोप में वहीं संस्थाएं 700–800 सालों से चलती चली जा रही हैं।

मैं प्रिंसटन यूनिवर्सिटी में पी.एच.डी. कर रहा था। वहां जो मुख्य भवन है, वहां की सीढियों पर चढ़ें तो वहां पर ऐसे गड्ढे पड़े हुए है जो यह बताते है कि 400 सालों से काम में आने के कारण ऐसा हुआ है और इन गड्ढों को उसी तरह से संरक्षित किया गया है। और हमारे यहां कौन सा भवन को तीस–चालीस साल से ज्यादा टिक पाता है? कहीं हमारा नजरिया बिगड़ गया है। तो हमारा जो प्रशासन है, शासन है, जो हमारा कार्य प्रणाली है वह आज किसी परिप्रेक्ष्य में नहीं है। परिप्रेक्ष्य ही खत्म हो गया और मैं उसका छोटा सा उदाहरण दूंगा। आप डब्ल्यू. टी. ओ. को लीजिए। डब्ल्यू. टी. ओ. में व्यापार और कृषि की बात हुई है जिससे आज देश में खलबली मची हुई है। किसान पीड़ित हैं और कई जगह

इसके विरोध में प्रदर्शन हुए हैं। सन 1982 से संयुक्त राज्य अमेरिका का दबाव था कि व्यापार एवं कृषि खोल दिया जाए।

तो व्यापार एवं कृषि खुलने की बात हमें पता है। हमारे जो नीतियां बनाने वाले हैं उनको पता है कि अमेरिका का दबाव 1982 से पड़ रहा हैं। फिर 1986 में जब उरूग्वे दौर की वार्ता शुरू हुई तो वहां यह एक प्रमुख मुद्दा बन गया कि व्यापार एवं कृषि को इसमें शामिल किया जाना चाहिए। इस तरह बहस में यह बात आ गई कि व्यापार एवं कृषि शामिल होना चाहिए। फिर 1990 में डंकल ड्राफ्ट आया जिसमें व्यापार एवं कृषि शामिल थीं। 1994 में माराकेश में हमने इस पर हस्ताक्षर कर दिए कि अब व्यापार एवं कृषि दोनों खुल जाएंगे। 1994 में अमेरिका हमें डब्ल्यू. टी.ओ. के विवाद निपटारे मंच पर ले गया कि भारत ने अभी तक कृषि पूरी तरह नहीं खोला है और इसे खोलने के लिए कहा जाए। **क्वांटिटेटिव रिस्ट्रीक्शन्स अभी भी है।** 1999 में हम डब्ल्यू. टी.ओ. के विवाद निपटारे मंच पर हार जाते हैं। अप्रैल 2000 में जब व्यापार एवं कृषि खुल जाता है तो नारियल, कॉफी, रबर आदि की कीमतें गिरने लगती हैं और देश में हाहाकार मचना शुरू हो जाता है।

तो फिर हम 18 सालों तक क्यों सोते रहें? हमारे पास संपूर्ण जानकारी थी कि 1982, 1986, 1994, 1997, 1999, में क्या–क्या हो रहा है, तब भी हमने कुछ नहीं किया। देश में हम सोते रहे। क्यों सोते रहे? क्योंकि हमारा कोई नजरिया, कोई व्यापक परिप्रेक्ष्य ही नहीं है। हमने कोई आकलन/अनुमान ही नहीं लगाया। तो जब शासन की बात आती है, जब प्रशासन की बात आती है, उससे एक परिप्रेक्ष्य जुड़ा होता है जिसके अंदर आप आकलन कर सकते है। आज भी हमारा कोई आकलन नहीं हैं। होता यह है कि हम नीति संबंधी निर्णय तदर्थ आधार पर लेते है, और उससे अंर्तविरोध सामने आ जाते है। हम एक चीज यहां कर रहे है, एक चीज वहां कर रहे है, और दोनों आपस में टकरा रही है।

मैं एक छोटा सा उदाहरण देता हूं। हमारे यहां रोजगार पाना बड़ा मुश्किल है। आज हमारे यहां 80 लाख बच्चे हर साल रोजगार बाजार में आते है। और पिछले 2 सालों से संगठित क्षेत्र, जहां थोक पूंजी निवेश होता है, उसमें रोजगार पैदा ही नहीं हो रहा है। लेकिन सारा पूंजी निवेश तो वहां जा रहा है करीब–करीब। तो ये लोग कहां जाएंगे? जो 80 लाख नए बच्चे रोजगार बाजार में आते है हर साल, वे कहां जाएंगे?

तो इसके लिए आप बजट देखिए। पिछले साल के केंद्रीय बजट में 375 हजार करोड़ खर्च होना था। और इसमें रोजगार मुहैया कराने के लिए 20 हजार करोड़ दिया गया। अगर 375 हजार करोड़ की दिशा है कि वह बेरोजगारी पैदा करेगा तो 20 हजार करोड़ रुपये खर्च करके आप उसको कैसे पलट सकेंगे? आप नहीं कर सकते, जब तक कि 375 हजार करोड़ की दिशा रोजगार पैदा करने की नहीं होगी, तब तक 20 हजार करोड़ इस दिशा को नहीं बदल सकता है। तो हमारा लोक वित्त कैसा होना चाहिए? हम 1991 से एक नीति अपना रहे हैं कि हमे विश्व व्यापी स्पर्द्धा करनी है, पूंजी सघन उद्योग को बढ़ाना है।

पूंजी की सघनता तो बढ़ रही है। सन 1990 के पहले, संघटित क्षेत्र में प्रत्येक एक करोड़ रुपए के पूंजी निवेश में 6 रोजगार मिलते थे, जबकि आज इसी निवेश में केवल एक रोजगार प्राप्त होता हैं। तो इतनी पूंजी सघनता बढ़ने के बावजूद अगर रोजगार के अवसर नहीं बढ़ रहे हैं तो बढ़ते हुए बेरोजगारों की फौज कहां जाएगी? पर एक तरफ अगर बड़े

उद्योग बढ़ रहे हैं, तो उसके पीछे जो छोटे उद्योग हैं वे पीछे हटते चले जा रहे हैं। जैसे पापड़ बनाना है तो अब पेप्सी बना रही है। जो दूसरे उद्योग आए वे भी आलू के चिप्स, दाल–भुजिया बना रहे हैं। डीप–सी ट्रालर्स (यानी गहरे समुद्र में मछलियां पकड़ने वाले मशीनी जहाज) के कारण छोटे मछुआरे नुकसान उठाते हैं। रस्सी तक प्लास्टिक की बनने लगी है, तो उसके कारण जूट से रस्सी बनाने वाले बेरोजगार होते हैं, आदि।

इस तरह सारे छोटे उद्योग खत्म हो रहे हैं। इस तरह अगर जो नए उद्योग आ रहे हैं, उनमें अगर एक व्यक्ति को नया रोजगार मिलेगा तो उसके पीछे वहां 29 लोगों का रोजगार खत्म हो जाएगा। इसलिए जब तक हमारी सारी नीतियां, एक एकीकृत नीति और दृष्टि के तहत नहीं होंगी, तब तक हम बेरोजगारी की समस्या हल नहीं कर सकते। तो मेरा यह मानना है कि हमारे देश की जो एक दृष्टि थी, नजरिया था, वह बिगड़ गया है। दृष्टि तो है ही नहीं और अगर है तो वह यही है कि बाहर से उधार ले लो। अब तो हमारे यहां किस तरह का लोक वित्त हो इसका फैसला संयुक्त राज्य अमेरिका की नकल करने में है।

यदि वहां पर गैट (जनरल एग्रीमेंट आन ट्रेड ऐंड टैरिफ्स) की बात है तो यहां पर गैट की बात होती है। वहां यदि सीधे कर (डायरेक्ट टैक्स) की बात हो रही हैं तो भारत में भी वही बात होती है। वहां पर बड़े उद्योगों की बात है, तो यहां पर भी बड़े उद्योग स्थापित हो जाएं। इस तरह हमारा सारा का सारा विकास वहां से निर्धारित हो रहा है और हमारा जो कुलीन वर्ग है, वह उसमें शामिल है। इसके पीछे काली अर्थव्यवस्था की बहुत बड़ी भूमिका है। यह काली अर्थव्यवस्था क्या है? काली अर्थव्यवस्था की वजह से नीतियां असफल हो जाती है।

योजना को देखिए तो नियोजन की असफलता और आप छोटे स्तर पर शिक्षा को देखे तो शिक्षा की असफलता। जहां एक रुपया स्कूल बनाने के लिए दिया जाए और 15 पैसे जमीन पर पहुंचे, तो आप स्कूल 6 सालों में भी नहीं बना सकते। यानी कि आप शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते। आपने वहां स्कूल बना भी लिया तो वहां शिक्षक नहीं है। और अगर वहां शिक्षक हैं तो वे भी ठीक ढंग से नहीं पढ़ा रहे हैं। शिक्षक ज्यादातर निजी ट्यूशन में रूचि रखते हैं। तो आपने पैसा भेजा भी तो वह प्रभावी नहीं है। इस तरह काली अर्थव्यवस्था के चलते हुए छोटे स्तर पर और बड़े स्तर पर, दोनों ही में नीतियां असफल हो जाती है। इस कारण से राज्य के हस्तक्षेप की साख गिरती है। ऐसा राजकीय हस्तक्षेप सफल नहीं हो सकता है और निजी क्षेत्र को यहीं चाहिए कि राज्य हट जाए और सारा बाजार हमारे लिए खुला छुट जाए। ताकि हम जो करना चाहे वह करें। हमें पूंजी सघनता बढ़ानी है तो हम बढ़ा लें, छोटे उद्योगों को हटाना है तो हटा लें।

1991 में एक पहला कदम बजट में यह उठाया गया कि एम. आर. टी. पी. ऐक्ट (मोनोपॉली ऐंड रिस्ट्रिक्टिव ट्रेड पालिसी ऐक्ट) ही हटा लिया गया। इस तरह से छोटे उद्योगों को जो संरक्षण मिला था वह खत्म कर दिया गया। अब मात्रात्मक प्रतिबंध भी हटा लिए गए है तो लघु उद्योग क्षेत्र का कोई मतलब ही नहीं बचा। अब आप लघु उद्योग के नाम पर क्या करेंगे? सारा माल तो अब बाहर से आएगा। तो आपके लघु उद्योग क्षेत्र कैसे प्रतिस्पर्द्धा करेंगें? उनके पास तकनॉलाजी नहीं है, उनके पास मार्केटिंग के साधन नहीं है। तो अगर हमारा एक समग्र परिप्रेक्ष्य नहीं होगा, कि हमको किस दृष्टि में हमारा देश चलाना है, किस तरह का प्रशासन देना है, किस तरह से लोगों को साथ लाना है, हमारे जो मछुआरे

हैं, छोटे उद्योग है, उनके बारे में हमारा नजरिया एकदम साफ नहीं होगा तो हम क्या कर पाएंगें?

और हमारे राज्य किस तरह के होंगे? अब जैसे पश्चिम बंगाल है, वह शुरू में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विरोध कर रहे थे। जब उन्होंने देखा कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विरोध करना संभव नहीं होगा, क्योंकि केन्द्रीय स्तर पर हमारा बाजार खुल गया है, तो आप अकेले विरोध करेंगे तो भी कुछ नहीं होगा। इसलिए आपको भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का स्वागत करना पड़ा। जब केंद्रीय स्तर पर एक तरह की नीतिया निर्धारित हो रही है, जो पूरी तरह बाजार की ओर जा रही हैं, तो ऐसी स्थिति में हमारे देश के विभिन्न राज्य है वे उसके खिलाफ चाहते हुए भी नहीं चल सकते। क्योंकि तब उनके राज्यों से पूंजी निवेश हट जाएगा। केरल में क्या हुआ? श्रमिक वर्ग उग्र हुआ, वहां शिक्षा है, लेकिन वहां पूंजी निवेश नहीं हो रहा।

1947 में पश्चिम बंगाल भारत का सबसे ज्यादा समृद्ध प्रदेश था। लेकिन श्रमिक वर्ग की आक्रामकता के चलते पूंजी निवेश वहां से हटकर महाराष्ट्र व गुजरात चला गया। इस तरह वे दोनों सबसे समृद्ध राज्य हो गए। बाद में जब वहां भी श्रमिक आक्रामकता बढ़ी, खासकर बंबई में, तो पूंजी निवेश वहां से भी बाहर चला गया। बहुराष्ट्रीय कंपनिया तो वैसे भी अलग–अलग राज्यों को एक दूसरे के खिलाफ लड़ाने में माहिर हैं। अगर आंध्रप्रदेश कोई छूट दे रहा है, तो फिर महाराष्ट्र आओ और उनको बताओं कि आंध्रप्रदेश में यह छूट मिल रही है। यदि कर्नाटक कोई छूट दे रहा है तो, पश्चिम बंगाल को कहो कि आप भी हमें ये छूट दीजिए। इससे राज्यों क्षमता कम हो गई।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों को कई सारी छूट दी जा रही हैं। तो ऐसे में राज्यों के पास संसाधन कहां से आएंगे? एक तरफ काली अर्थव्यवस्था है जो जी. डी. पी. का 40 प्रतिशत है। इसके रहते हुए 3.5 लाख करोड़ रुपए के करो की वसूली नहीं हो पा रही। यह हमारे घाटे का तीन गुना हैं। यदि ये सारे संसाधन हमारे पास होते तो हम इन्हें विकास के कामों में लगाते। तो ऐसी स्थिति में आप क्या करेंगे? काली अर्थव्यवस्था ने हमारे साधन छिन लिए। साधन गलत दिशा में भी चले जाते है, जैसे कि सोना, जमीन–जायदाद, जो **स्पेकुलेटिव** है।

आज अर्थव्यवस्था कौन चला रहा है? **स्पेकुलेटर्स**। बजट के बाद क्या देखा जाता है? शेयर बाजार में सुधार। यह सारा **स्पेकुलेशन** होता है। यह नहीं कि जो गरीब किसान है, जो मझौली उद्योग है, वह क्या कह रहे हैं? उनके लिए पर्याप्त है या नहीं यह नहीं देखा जाता। टी. वी. पर जो लोग आते है वह उद्योग जगत के होते है। ओंकार गोस्वामी भारतीय उद्योगों के संगठन (कॅन्फेडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्रीज – सी. आई. आई.) के प्रतिनिधि हैं। टिप्पणियां किनसे ली जाती हैं? शेयर बाजार से, कि यह बजट अच्छा हैं। बाजार निर्धारित करता है कि क्या नीतियां होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए।

तो इसमें गरीब आदमी कहां आता है? इसमें स्थानीय संचार माध्यम कहां हैं? यह भी देखिए कि बजट कितना बड़ा दस्तावेज है? कितना जटिल दस्तावेज है? ज्यादातर सांसदों को बजट दस्तावेज समझ में नहीं आता। बजट पेश होने के बाद जो बहस होती है, उसमें उद्योग जगत के विचार सामने आते हैं, सी.आई.आई., एफ.आई.सी.सी.आई., एस्सोकैम. के विचार आते है। आम आदमी का विचार प्रस्तुत करने के लिए समय भी नहीं होता। उनको

समझ में भी नहीं आता कि बजट में, डब्ल्यू. टी. ओ. में, क्या हो रहा हैं? किसान ने नारियल उगाया था, लेकिन उसके दाम गिर गए। उसने कुछ माडल बीज ग्रहण किए थे, जिससे उसकी खेती की लागत बढ़ गई लेकिन उसके दाम गिर गए। इसीलिए पंजाब, आंध्रप्रदेश में किसान आत्महत्या कर रहें हैं।

बाजार की एकतरफा प्रभुत्व वाली भागीदारी होती है। अगर आप हाशिए पर हैं तो बाजार आपको दबाव डाल कर भागीदारी बना लेगा। बस्तर के आदिवासी भी इसी दबाव के कारण बाजार से जुड़ रहे हैं। हमारी संस्कृति पर देखिए, उद्योगों पर देखिए, सभी जगह एकतरफा भागीदारी हो रही है। उसमें हमारा नजरिया नहीं है। पहले हमें अपना नजरिया, अपना परिप्रेक्ष्य विकसित करना होगा। हमारे सत्ताधारी वर्ग का जो ढांचा है वह तिकड़ी काली अर्थ व्यवस्था के पीछे है। यह तिकड़ी क्या है? यह है हमारी भ्रष्ट कार्यपालिका (इसमें न्यायपालिका, पुलिस और नौकरशाही हैं), भ्रष्ट उद्योगपति और भ्रष्ट राजनेता। यहीं राज्य को नियंत्रित करने वाले लोग है। तो इन लोगों ने अपनी तिकड़ी बना ली और अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए अपनी नीतियों को आगे बढ़ाने के लिए राज्य पर अपना नियंत्रण कर लिया और यहीं लोग काली अर्थव्यवस्था का अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करते है ।

काली अर्थव्यवस्था का नजरिया या काली अर्थव्यवस्था का उपयोग करने वालों का नजरिया, सर्वप्रमुख नजरिया हो गया है। यदि हमें अपना नजरिया विकसित करना है, देश का विकास करना है, तो 'सूचना का अधिकार' बहुत जरूरी है। सूचना का अधिकार, जवाबदेही, पारदर्शिता, हमें अपनी नीतियां बनाने में मदद करेंगी। लेकिन सूचना का अधिकार, जवाबदेही, पारदर्शिता, केवल खाली बक्सों की तरह रह जाते है। हम नारे देते है, लेकिन अपनी स्थानीय संस्थाओं में उन्हें लागू नहीं कर पाते। नई दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में सूचना के अधिकार की बात मैं कई सालों से कर रहा हूं। लेकिन जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में सूचना का अधिकार नहीं है। जबकि वहां तो इस देश के सबसे ज्यादा शिक्षित लोग है। लेकिन हम सूचना के अधिकार को लागू नहीं कर पाए। तो आम लोगों के स्तर पर सूचना का अधिकार, राज्य कैसे लागू करेगा?

भूमंडलीकरण को समझना पड़ेगा क्योंकि यह भूमंडलीकरण हमारे गांव को, दुनिया की पूंजी से बांध देता है और हमे पता भी नहीं लगता कि हम बंध गए। भूमंडलीकरण दिशा निर्धारण कर रहा है। वह हमारी केंद्रीय सरकार की नीतियों को नियंत्रित कर रहा है। फिर राज्य सरकार की नीतियों को और इसके माध्यम से जिला स्तर की नीतियों को नियंत्रित कर रहा है। तो ऊपर से नीचे तक इस तरह पूरी कड़ियां जुड़ी हुई हैं।

आज दुनिया का जो वैश्विक धन है, उसमें अवैध धन सर्वप्रमुख हैं। आज नशीली दवाओं का व्यापार पेट्रोलियम व्यापार से ज्यादा है। दुनिया में जो कानूनी व्यापार है उसमें पेट्रोलियम सबसे ज्यादा है। लेकिन नशीली दवाओं का व्यापार तो उससे भी ज्यादा है। दुनिया में करीब दो खरब डॉलर रोज इधर से उधर जाते हैं अर्थात भारत के जी. डी. पी. से 5 गुना ज्यादा पैसा रोज आवाजाही करता हैं। और यह किस लिए होता है? मुनाफा कमाने के लिए और हमें बांध देता है। इस दो खरब डॉलर की ताकत का अंदाजा लगाया जा सकता है। थाइलैंड के पास 25 अरब डॉलर का विदेशी मुद्रा भंडार था। यह देखते–देखते खत्म हो गया। कोरिया के पास 45 अरब डॉलर थे, देखते–देखते वह भी खत्म हो गये। हांगकांग के

पास 800 लाख डॉलर थे, देखते–देखते खत्म हो गये। तो इस तरह यह वैश्विक धन हमें बांध लेता है और वह जो करवाना चाहते है वह करवा लेते हैं।

हमे पता भी नहीं लगता कि हम कहां बंध रहे है। हम डब्ल्यू. टी. ओ.में कहां बंध रहे है? विश्व बैंक में कहां बंध रहे है? सब दलाल हैं ऊपर से नीचे तक और हमें पता भी नहीं है। हमारे सत्ताधारी–कुलीन वर्ग ने यह मान लिया कि यूरोपियन आधुनिकता की ओर जाना ही हमारी उन्नति हैं, तो जो उन्होंने कहा हम भी वहीं करेंगे। हमारी सारी संरचना ऐसी हैं। उसमें काली अर्थव्यवस्था भी है, भ्रष्टाचार भी है, हमारा कुशासन भी है। कोई नजरिया न होने के कारण हम उससे अलग–अलग जगह लड़ रहे है। कोई डब्ल्यू. टी. ओ. की लड़ाई में है, तो कोई भ्रष्टाचार की लड़ाई में है, वगैरह–वगैरह।

इसलिए हमें सूचना का अधिकार, जवाबदेही, पारदर्शिता, विकेंद्रीकरण, इन सबको साथ लेकर आंदोलन खड़े करने है। लेकिन उसका एक समग्र नजरिया बनाना पड़ेगा। आज हमारी नौकरशाही हमारे लिए डब्ल्यू. टी. ओ. में बातचीत करने जाती है। वह क्या हमारे लिए बातचीत करती है? जब उन लोगो की सेवा–अवधि खत्म होती है तो वे डब्ल्यू. टी. ओ. में नौकरी कर लेते है। हमारे वरिष्ठ नौकरशाह अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक में चले जाते है। वह लोग यहां बैठे–बैठे अपने संपर्क मजबूत करते है। यह हमारे प्रशासन का चरित्र है। उसे आम जनता से कोई लेना–देना नहीं और उनका जो लेना–देना है वह बाहर ही है।

इसको हमें आंदोलन के जरिए बदलना होगा। और यह आंदोलन एक समग्र परिप्रेक्ष्य को अपनाएगा – भूमंडलीकरण के बारे में चुनौतियां क्या है? भूमंडलीकरण की चुनौती है, ज्ञान की चुनौती, तकनॉलाजी की चुनौती। आज जो लोग आनुवंशिक संशोधन वाले खाद्य की बात कर रहे हैं, वे लोग धीरे–धीरे प्रभावशाली होते जा रहे हैं। वे भारत में सोयाबिन आदि धकेलते जा रहे हैं। हम इसे नियंत्रित नहीं कर पा रहे क्योंकि हमे तो उसके बारे में समझ ही नहीं है। हमारे बासमती के पेटेंट्स वगैरह जो संयुक्त राज्य अमेरिका में हो रहे हैं, तो उसके बारे में क्या आम किसान को पता है कि पैटेंट्स क्या है? यह एक लंबी बात है और लंबी लड़ाई है। इसको हम एक अपना नजरिया लेकर ही समझ सकते है।"

उत्तराखंड : क्षेत्रीय पहचान, लोकतंत्र एवं राष्ट्र निर्माण के मुद्दे' विषय पर बोलते हुए **प्रो. धीरूभाई शेठ** ने कहा कि "जब उत्तराखंड की लड़ाई चल रही थी, तब यहां पर बहुत सारी मीटिंग्स हुआ करती थी। उसकी मुझे याद आ गयी और उसका आज संबंध है। इसलिए आज की गोष्ठी में मैं उन सभी बातों को बार–बार याद कर रहा हूं। तब बार–बार मन में यह सवाल आता था कि उत्तराखंड जब बनेगा तो वह कैसा होगा? इसमें क्या चीजें आयेंगी, उसका महत्व क्या है? उसकी अपनी पहचान कैसी बनायेंगे? वह पहचान की जो बात हो रही थी उसका संबंध केवल क्षेत्रीयता से नहीं था। वह केवल एक सपना नहीं था। कुछ ठोस बातें भी हो रही थी। और कुछ योजनायें भी बन रही थी। सेल्फ–सफिसियेंसी, वगैरह–वगैरह बातें उत्तराखंड के बारे में हम सोचते थे। यह मुलायमकांड होने से पहले के सिलसिले की मैं बात कर रहा हूं। अब राज्य भी बना। राज्य बनने के बाद भी हम यहां मीटिंग कर रहे हैं इसका मतलब यह है कि आज भी लोगों के मन में कुछ विचार है, सपने है उत्तराखंड को विकसित करने के लिए। हम सभी लोग आंदोलन में विश्वास करते है। मैं भी एक ऐसे ही आंदोलन में बहुत सालों पहले जुड़ा रहा। जब महागुजरात और महाराष्ट्र का आंदोलन चल रहा था उसमें मैंने भागीदारी ली थी। और उस वक्त तो काफी जोश से हमने काम किया था। वह भी राज्य बन गया। और सब चीजें आपके सामने है। तो कौन सी

राजनीति हमारे यहां हो सकती है क्योंकि आंदोलन से जो विचार निकलते है। आंदोलन में जो आदर्श बनते है। आंदोलन में जो एक सपना आकार लेता है। उसमें कुछ चीजें जब राज्य बन जाय तो बदल जाती है। यह बात मैंने हमेशा देखी है कि आंदोलन का तर्क और सरकार बनाने का तर्क बहुत अलग–अलग होते है।

आंदोलन के तर्क का एक उपयोग हो जाता है सरकार में। लेकिन उसका मेन प्वाइंट यह होता है कि आंदोलन के तर्क को कैसे दफनाया जाय। उसको कैसे कहीं ना कहीं बैठा दिया जाय। क्योंकि उसके बिना सरकार बन नहीं सकती है। और शासन नहीं चल सकता है। और यह गुजरात में हुआ, और सब जगह हुआ। लेकिन सबसे ज्यादा तो भारत में हुआ। मतलब कि आजादी के आंदोलन में जो आदर्श, जो प्रिंसिपल्स वगैरह था, वह लुप्त हो गये। बिल्कुल एक नई राजनीति बनती है जिसमें आदर्शों को हटा दिया जाता है। उनको दफना दिया जाता है। और इसीलिए जैसा आजादी का आंदोलन हुआ तो इस आंदोलन से निकले हुए जो विचार थे, जो आदर्श थे उसे लोग जब सत्ता में आए तो डर गए उसे लागू करने में। तो यह चीजें है। इस बारे में मैने इसलिए थोड़ी लंबी प्रस्तावना दी है क्योंकि अगर इसमें से कुछ बातें अभी इस सत्र में चर्चा के लिए लायी जाएं और दोबारा उस पर बात हो तो मुझे लगता है कि उत्तरांचल या उत्तराखंड (जैसे भी आप बोलिए) उसमें अभी भी एक संभावना है। क्योंकि उसकी अपनी ऐसी कुछ खासियत ऐसी है। उसका अपना हिस्टरी ऐसा है कि कई चीजें बहुत अच्छे सेंस में बाहर लायी जा सकती हैं। और जो आंदोलन का तर्क है उसको सरकार चलाने के तर्क में भी शायद जोड़ा जा सके। ऐसा अभी भी मुझे लगता उत्तराखंड के बारे में।"

श्री राजेन्द्र धस्माना ने उत्तराखंड के इतिहास–भूगोल को समेटते हुए नये राज्य के बारे में विस्तार से अपनी बातें कही, उनका कहना था कि "उत्तराखंड में एक तरह से त्रैकोणीय समाज था पहले से ही। जिसमें तीन जातियां थीं और वैश्य नहीं थे। बहुत बाद में कुछ जातियां आयी जिन्होंने वैश्य का काम किया। उसमें मारवाड़ी वगैरह थे। ये काफी बाद की पोजिशन्स है। पर मूलतः उसमें वैश्य जाति न होने से उद्यमिता का अभाव रहा। उद्यमों में सिर्फ कुछ शिल्प थे जो उन्होंने वहां के शिड्यूल कास्ट को बांट दिए थे। जिन्हें बाद में शिल्पकार कहा गया। और फिर शिल्पकार के बाद आर्य नाम दिया गया। तो जो उत्तराखंड का समाज है उसमें उद्यमिता का विकास शुरू से नहीं हो पाया इस कम्युनिटी के न होने से।

दूसरे जब गोरखाओं के बाद (बैटल ऑफ नाला–पानी के बाद) जब अंग्रेजों को गोरखाओं द्वारा कम्पेंसेशन के रूप में कुछ हिस्से लौटाए गए तो उसमें गढ़वाल का पौड़ी वाला हिस्सा, जिसमें चमोली शामिल था। चमोली बाद में बना। जो बोर्डर डिस्ट्रीक्ट्स है वह 1962 के बाद बने है। अल्मोड़ा, नैनीताल वाले हिस्से में एजुकेशन बहुत पहले से ही शुरू हो गयी थी। और एजुकेशन का नतीजा यह हुआ कि अल्मोड़ा से, और बाद में पौडी से माइग्रेशन शुरू हो गया। शिक्षा अधिक थी वहां पर और क्योंकि रोजगार के साधन उपलब्ध नहीं थे। तो गढ़वाल के ज्यादातर लोग दिल्ली की तरफ आए। कुमाऊँ के लोगों का ज्यादातर माइग्रेशन लखनऊ की तरफ हुआ।

गढ़वाल के जो लोग पहले नौकरी में गये– एक तो 1914 के बाद जो पहला विश्वयुद्ध था उसमें मिलिट्री में भर्ती हुए। दूसरे विश्वयुद्ध में भी वहां से लोग भर्ती किए गए। और इस बीच में एक टी–मेशान नाम के कलक्टर थे। दो बार पौडी में कलक्टर रहे। वह होम मिनिस्टरी और डिफेंस मिनिस्टरी में सेक्रेटरी रहे। क्लास फोर का जॉब और क्लरिकल जॉब सब इंडियन लोगों को दिया जाता था। वहां सब पहाड़ के लोग भर्ती कर दिए गए। वही जेनेरेशन धीरे–धीरे ब्यूरोक्रेट्स तक तरक्की कर गई।

यहां का आदमी जो छोटी–मोटी नौकरी करता था और मनीआर्डर घर पर करता था उसको एक इकोनॉमी का नाम दे दिया गया। मनीआर्डर इकोनॉमी। और यह इकोनॉमी किसी भी तरह से वाएबल नहीं थी। जिन–जिन इलाकों से माइग्रेशन हुआ वहां पर जितने भी मनीआर्डर गए, वह मनीआर्डर का पैसा उनकी मार्केट में रूका नहीं। किसी प्रोडक्टिव यूज में नहीं आया। जितना पैसा गया है वह दुकानदार के पास आ गया। दुकानदार सब बाहर के लोग थे। जहां तक पौडी का सवाल है पौडी के गांवों में आप देखेंगे जहां 200 घर थे वहां आज के दिन 70 के करीब घर रह गए है। बाकी सब उजड़ चुके है। यह माइग्रेशन का रिजल्ट है। हमारे यहां अब छोटा राज्य है। नए रूप में आप देख रहे है कि 53,119 स्कवायर कि.मी. में 16,669 गांव, 77 कस्बे, 13 जिले, 48 तहसीलें और 95 ब्लॉक। इतने छोटे राज्य में गांव की स्थिति अब भी बड़ी भयानक है।

हमारे पास जो पहाड़ी हिस्सा है, जिसके लिए उत्तराखंड का राज्य मांगा गया था। उसका कारण यह था कि पहाड़ों का विकास हो। यह सबसे बड़ा आंदोलन था अपने विकास के लिए। उनका यह सपना था कि विकास के लिए आवश्यक संसाधनों की पूर्ति उन्हें की जाएगी। हमारे यहां जो जमीन थी उसमें 13 प्रतिशत उपजाऊ जमीन थी। 12 प्रतिशत बंजर था। 63 प्रतिशत में वन थे। सरकार ने वन क्षेत्र अपने अधिकार में लिए। वनों के ऊपर जो अधिकार शुरू हुआ वह अंग्रेजों के जमाने से ही शुरू हुआ। अंग्रेजों को उससे राजस्व कमाना था और उस राजस्व को उन्हें इंग्लैंड भेजना था।

मगर जब आजादी मिली तो वन के कानून जो अंग्रेजों ने बनाये थे उनको और भी कड़ा कर दिया गया। यह बात समझ में नहीं आयी कि अंग्रेजों ने वनों पर कब्जा इसलिए किया था कि उन्हें राजस्व कमाकर इंग्लैंड भेजना था। जब हमें आजादी मिली तो हमारी सरकार ने वह वन गांवों को लौटाये नहीं। हमारे गांवों का जो जीवन था। गांव वालों का और वनों की जो पारस्परिकता थी। निर्भरता थी उनकी वनों पर उसको काट दिया गया। और अभी तक भी जब वनों को आग लगती है तो लोग कहते है कि सरकारी वन है, हम आग नहीं बुझाएंगे। इस तरह से वनों की और लोगों की जो दोस्ती थी उसमें दरारें हमारी सरकार ने बाद में पैदा की।

इतने कड़े कानून बना दिए कि उनके ऊपर फिर वहीं, मतलब जो व्यवस्था है चाहे हमारा संविधान हो, उसमें से भी 65–70 प्रतिशत अंग्रेजों ने ड्राफ्ट किया था। एक्सटर्नल अफेयर्स और डिफेंस को छोड़ के सारी व्यवस्था हमने अंग्रेजों से ही ले लिया। उसमें कुछ विशेष परिवर्तन नहीं आया। सारी की सारी व्यवस्था, वेस्ट मिनिस्टर मॉडल और व्यूरोक्रेसी को हमने बॉरो कर लिया अंग्रेजों से। 1905 से उसके बारे में बहस शुरू हो गयी थी। गांधी जी का विरोध होने के बावजूद इन चीजों को अपनाया गया था। गांधी के जो सलुशन्स थे उसमें पंचायत राज था। लेकिन जो संविधन में 73वें, 74वें अमेंडमेंट्स किये गये, 1993 में, वह भी गांधी के अनुसार नहीं है। तो जो सरकार आयी वह ऐसी व्यवस्था को लायी सारे देश में, जिसने अपने बारे में कोई सोच ही पैदा नहीं की थी। तो हम भी अंग्रेजों की सोच पर ही चलते रहे। 1909 में गांधी जी किताब हिन्द स्वराज आ गयी थी। उसमें ही उन्होंने वेस्ट मिनिस्टर मॉडल अपनाने का विरोध किया था। उन्होंने पंचायत राज को ज्यादा महत्व दिया था।

पंचायत राज के बारे में हम बाद में बात करेंगे। पहले देखना है कि जमीन के बारे में हम कैसे करें। 13प्रतिशत जमीन जो हमारे पास थी, खेती करने लायक, उसका परसेंटेज आज केवल 12.88 प्रतिशत हो गया है। हर साल यह जमीन घटती जा रही है। हमारे पास जो 12 प्रतिशत बंजर जमीन थी, वह आज 12.22 प्रतिशत हो गयी। बंजर भूमि बढ़ रही है। इसकी एक वजह है कि अगर आप उत्तराखंड को देखें। तो जो पेरिफेरल उत्तराखंड है या आदिवासियों का उत्तराखंड है, उसमें शहरों को घटाने के बाद केवल आदिवासी जन जातियां रहती है। बीच का जो मध्य भाग है, उसमें पॉपुलेशन का सबसे बड़ा प्रेशर है। और इसी पॉपुलेशन के प्रेशर में इकोनॉमी का सारा चक्र चल रहा है।

मध्य भाग में जो पॉपुलेशन है। वहां से लगभग 55 लाख का माइग्रेशन हो चुका है। अगर हम मैदानी हिस्सों को न ले तो केवल पहाड़ों से ही इतना माइग्रेशन हुआ है। ज्यादातर माइग्रेशन ऊपर ही है। नीचे के हिस्सों में माइग्रेशन कम हुआ है। अगर यह पॉपुलेशन वहां होती तो स्थिति और भयानक होती। और आप कहते है कि माइग्रेशन को रोक देना चाहिए। अगर लोग वापस आना चाहे तो वहां प्राब्लेम क्रिएट होगी। जो लोग वहां पर मौजूद है उनके लिए कोई भी स्रोत नहीं रहने का। सरकार उनके प्रति कोई प्रयास नहीं कर रही। और यदि वह कुछ देना चाहे तो दे नहीं पाएंगी। तो यह भी कोई सलुशन नहीं है।

पॉपुलेशन का वनों पर दबाव पड़ा। पॉपुलेशन की वजह से जमीन पर दबाव पड़ा। पहाड़ के मध्यभाग में जो खेती है, उसमें अगर एक परिवार में 5 लोग है, और वह 7 हो जाते है, बाद में यदि 10 हो जाते है तो वह लोग दूर के खेतों को छोड़ कर चले जाते है। और धीरे–धीरे वह संकुचित हो कर वह परसेंटेज घटती जा रही है। उस 13 प्रतिशत में भी 10 प्रतिशत सिचाई योग्य है। बाकी तो बारिश के ऊपर डिपेंड करता है। बारिश वाले खेतों में बंजर ज्यादा हो रही है। और यह परसेंटेज अभी बढ़ रही है। उसके साथ ही जो मध्य भाग है हमारा इसी में चार्जेज लगाए जाते है कि वहां के लोग शराब ज्यादा पीते है इसी बीच के हिस्से के बारे में। ट्राइबल्स के बारे में कभी प्रोहिबिशन की कोई प्राब्लेम नहीं है। वह खुद बनाते है, पीते है, खेती करते है, उत्पादन करते है। वहां मद्यनिषेध प्रोहिबिशन के लिए कोई आंदोलन नहीं है।

इसी बीच के इलाके में मद्य का ज्यादा प्रकोप हो गया है। लोग ताश खेलते है सारा दिन। शाम को शराब पीते है। खेतों में काम नहीं करते। इसलिए सारे काम का बोझ महिलाओं पर जाता हैं एक हल मात्र लगाता है पुरुष। बाकी जंगल से घास लाना, लकड़ी लाना, खेती में काम करना, लकड़ी की कटाई करना, अनाज पकाना, सारा का सारा काम महिलाओं को ही करना पड़ता है। यह सिर्फ मध्य हिमालय के मध्यभाग में हो रहा है।

यदि आप ऊपरवाले गांवों में जाकर देखेंगे तो वहां औरत और मर्द दोनों बराबरी का काम करते है। यह जो बीच का हिस्सा है। और बीच के हिस्से में भी यह है कि जब कल्टीवेशन 13 प्रतिशत था। तब भी उसका तीन या चार महिने से ज्यादा का गुजारा नहीं होता था। और अल्टीमेटली हताशा यह है कि जब खेती से केवल 3–4 महिने का ही गुजारा होने वाला है। तो फिर उस खेती को करके फायदा क्या है? यदि सब चीजे हमने सात–आठ महिने तक बाजार से ही खरीदनी है तो सारे साल ही बजार से खरीद लेंगे। इसमें कुछ मदद उन्होंने भी की जो नौकरी पर आये। उन्होंने पैसे भेजे, तो सब मार्केट में आते रहे। इसी सारे चक्र में हमारा उत्तराखंड फंसा रहा।

दूसरी यह बात कि वहां से कर्म संस्कृति समाप्त हो गयी। पर मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं कि आजादी के आठ साल बाद 1955 में पौडी के लोगों ने 200 कि.मी. सड़क अपने आप खोद के बनायी थी। एडमिनिस्ट्रेशन ने उनको कुदाल, फावड़े तक नहीं दिये। यह देख के उन्होंने मजाक उड़ायी कि अपने आप कभी सड़क बनती है? तो यह जो कर्म संस्कृति है यह कैसे नष्ट हुई।

उन्हें बताया गया कि आप अपने खर्चे से सड़क बनाने वाले मूर्ख लोग हो। यह जो वोटों की राजनीति है इस देश में वह उनके गांव–गांव तक गयी। वोट बटोरने का काम जब पैसे के बदले, जब शराब मिली उन्हें वोटों के नाम से, तो यह जो शराब का कल्चर है, वह 1964 के बाद का कल्चर है हमारे यहां है। शराब का कल्चर और कर्म संस्कृति से विमुख होने का भी कल्चर हमारे यहां 1964 से आया। जहां तक उसका रिवाइवल का सवाल है तो अब देखना है कि कैसे हो सकता है?

अब आपके पास छोटा सा राज्य हैं। तीन छोटे राज्य बने हैं। उत्तराखंड का राज्य अंतरिम सरकार चला रही है। बाकी जगह पूरी सरकार है। बाकी जगह आप कोई विधेयक भी पास कर सकते है। पॉलिसी मैटर्स भी डिसाइड कर सकते है। मेमोरेंडम भी साइन कर सकते है। मगर हमारी अंतरिम सरकार यह समझ रही है कि हम भी ऐसे ही कर सकते हैं। उत्तरांचल सरकार केवल दो काम कर सकती हैं एक परिसीमन समय पर कर दें, और परिसम्पत्तियों का बंटवारा कर दे। यह दो काम करके छुट्टी करें। उस परिसीमन के बेसिस पर इलेक्शन हो। नयी सरकार पूरे काम अपने हाथों में ले। मगर हमारी सरकार के दिमाग में पहले दिन से ही गलत धारणा थी। क्योंकि उत्तराखंड राज्य देने के पीछे साजिश यह थी कि पहाड़ी हिस्से को किसी तरह से पिछड़ा रखा जाए। और उसमें ज्यादा से ज्यादा मैदानी हिस्सा मिलाया जाए। जून 1999 में भाजपा कि एक बैठक नैनीताल में हुई। उसमें यह सुझाया गया था कि पूरा हरिद्वार जिला, बिजनौर का पूरा जिला, मुरादाबाद का उत्तरी हिस्सा और विलासपुर और बहेडी को मिलाकर पहाड़ के साथ एक गलियारा दिया जाए जिससे कि पहाड़ के लोगों को दूध, सब्जी, अंडे वगैरह मिल सके।

हमने उनसे कहा भी कि अगर आप दूध और सब्जी नहीं पैदा कर सकते, तो राज्य क्यों मांगा? अगर आप दूध और सब्जी के लिए बिजनौर, मुरादाबाद के ऊपर निगाहें लगाए हुए है। हरिद्वार के ऊपर इसी उम्मीद के साथ यदि आप बैठे है कि आपको वहां से दूध और सब्जी मिलेंगे, तो फिर आपने राज्य किसलिए मांगा? यह प्रस्ताव प्रधानमंत्री को और गृहमंत्री को सौंपा गया था। और लगभग यह तय हो रहा था कि यह सारे हिस्से दिये जाएं। अभी तक भी नये राज्य में नित्यानंद स्वामी ने कहा कि गन्ना कमांड एरिया दिया जाए। इसका मतलब यह है कि पहाड़ के क्षेत्रों को अभी भी महत्व नहीं दिया जा रहा है।

और परिसीमन का काम जो पहले महिने हो जाना चाहिए था, वह तब शुरू हुआ जब लिंगदोह इलेक्शन कमिशन में आए। आठ महिनों के बाद भी परिसीमन का काम पूरा नहीं हुआ। परिसंपत्ति का जो बंटवारा है, उसमें अभी तक एक भी काम नहीं हुआ है। उनको रहने की समस्या थी तो उत्तरप्रदेश भवन का बंटवारा उन्होंने तुरंत किया। अभी लगभग 8–9 महिने हो गए। लेकिन उत्तरांचल सरकार ने अपना एकाउंट भी नहीं खोला है। जिन बसों में हम यात्रा करते है। उनका नाम यू.ए. हो गया यू.पी. की जगह। और टिकट हमें उत्तर प्रदेश के मिल रहे है। पैसा, हमारा राजस्व उत्तर प्रदेश में जमा हो रहा है। हमारा बिजली का पैसा, पानी का पैसा, ट्रांसपोर्ट का पैसा, यह लगभग एक महिने में 52 करोड़ रुपये के करीब वहां पर जमा हो रहा हैं हमारे वित्तमंत्री कह रहे कि इसका हिसाब किताब हो जाएगा। पता नहीं कब हो जाएगा। और इसके बारे में कोई चिंता नहीं है कि राजस्व कहां जा रहा है। क्या जा रहा है, कौन काम पहले करने है। कौन से बाद में करने है।

लेकिन यह जरूर है कि कहीं से कहीं बहुत बड़ा धन मिल जाए। कोई योजना मिल जाएं। उसको झपटा जाय। हमारा कहना यह है कि उत्तराखंड राज्य एक छोटा सा राज्य हमने मांगा है अपने विकास के लिए। तो हमारी अवधारणा है विकास की। कि हम उसको छोटे ही राज्य में करें। हमारे यहां छोटी इकाई गांव है। हमारे यहां 16,669 गांव है। और 13,000 हमारे एन.जी.ओज. है। हम चाहते है तो एक–एक एन.जी.ओ. अगर डेढ़ गांव में अपनी गोद ले लेता है तो हमें सरकार की जरूरत भी नहीं है। अगर एन.जी.ओज. इफेक्टिवली काम करें तो हमें राज्य की भी जरूरत नहीं है।

जो व्यवस्था है हमारे देश की, उसमें से हम कई चीजें नहीं चाहते। जैसे कि प्लानिंग कमिशन है। आपने बड़ा शोर मचाके रखा है कि प्लानिंग कमिशन सारे देश की प्लानिंग करता है। लेकिन कहां है यह प्लानिंग? प्लानिंग कमिशन तो केवल डिस्ट्रीब्यूटिंग एजेंसी हो गयी है। एक दिन में एक

स्टेट का फैसला कर देते है। एक चीफ मिनिस्टर अपने 20–22 आदमियों को लेकर बात करता है। शाम तक तय हो जाता कितना पैसा आपको चाहिए। और वह पैसे उनको मिल जाते है। कितना रुपये का डिवैल्युएशन हुआ है। और ज्यादा कितने रुपये देने होंगे। हमारा उत्तराखंड पूरा लघुभारत है। उत्तराखंड में भारतवर्ष में रहने वाली सारी कम्युनिटिज हैं उसके अलावा भी और कई भिन्नताएं है। उसके अलावा प्राकृतिक जैव विविधता है। हमारे उत्तराखंड में यदि आपको प्लानिंग करनी हो तो आप जब तक हर एक नदी, घाटी की जान–पहचान न हो आपको, जब तक हर एक नदी–घाटी की संस्कृति को नहीं जानते हो, वहां की परिवार संस्था को नहीं जानते हो, वहां की जरूरतों को नहीं जानते हो, उनके रीति–रिवाज को, उनके जीवनचर्या को नहीं जानते हो, तब तक आप उसकी प्लानिंग नहीं कर सकते।

यह जो हमारी सरकार है उसने एक नियमावली दी है वन की। मैं पांच तारीख को प्रधान सचिव से मिला और हमने कहा नियमावली की प्रतियां है यह। उन्होंने कहा कि कैबिनेट ने अप्रूव नहीं की है वह। जबकि कैबिनेट उसे अप्रिल में अप्रूव कर चुकी है। उनके दस्तखत है उस पर। वह छपी हुई है। यहां मौजूद है आप देख सकते है। गवर्नर भी अप्रूव कर चुका हैं दस तारीख को उन्होंने खुद लोगों को बांटी है। पर इसमें ट्रांसपरेंसी नहीं है इनफार्मेशन में। स्थिति यह है कि हमारे ऊपर यह चीजें इम्पोज की जा रही है। अब हमारा स्टेट प्लानिंग कमिशन है। वह हमारे पर जो कोई चीज इम्पोज करेगा। दिल्ली का प्लानिंग कमिशन हमारे पर इम्पोज करेगा। अब तो सीधे वर्ल्ड बैंक प्लान बनाके दे रहा है।

हमारे यहां 6 तरह के वन है। वैसे वनों को देखकर ऐसे लगता है कि वन एक ही तरह के होंगे। विश्व बैंक के लिए सबसे बड़ा सरदर्द यह है कि इतने वन कैसे है? उनका यह कहना है कि आप इन सभी वनों को एक कर दो और इसका सरकारी नियंत्रण कर दो। और यह जो अभी अभियान आया था माउंटनियरिंग एक्सपेडिशन के नाम पर। ज्वाइंट फारेस्ट मैनेजमेंट आया है। यह सारी साजिशें है।

जहां तक जल का सवाल है कि उससे हम बिजली पैदा करते है। बड़ा पावर हाउस बनेगा हमारे यहां जल में हमें कोई आजादी नहीं है। जल के ऊपर अगर हम एक सिंचाई योजना बनाना चाहे तो हमें उत्तर प्रदेश की सलाह लेनी पड़ेगी और उत्तर प्रदेश से यदि डिफरेंस ओपिनियन होगा तो सेंटर मध्यस्थता करेगा। यह जो अधिनियम है उसके अंतर्गत हमें आपने राज्य दिया। यह तो एक तरह का उपनिवेश दे दिया आपने हमें। अगर आप चाहें की आपके अंदर विजन भी हो, विजन के मुताबिक अपने संसाधनों को यूटिलाइज करके कुछ विकास करना भी चाहें, तो कैसे करेंगे आप?

हमारे सामने एक ही विकल्प हो सकता है। अगर पहाड़ को बचाना है तो अब एक ही इलेक्शन बचा हुआ हैं। कई लोग कह रहे हैं कि केवल आंदोलन से हो जाएगा। आंदोलन भी हमारा एक पक्ष है। और इसमें सक्रिय रूप से आना टैबू नहीं है। आप राजनीति की बुराई कर रहे है। और उनको एक फ्री हैंड दे रहे है। आप जब तक भीतर नहीं जाएंगे तब तक दुरूस्त नहीं कर सकते आप उनको। इसलिए पूरी सक्रियता के साथ, आंदोलनों के साथ भी, जनदबाव के साथ भी और भीतर जाकर भी उसका एक सलुशन आप निकाल सकते है।

नये राज्य के विकास के लिए नेतृत्व के पास एक व्यापक दृष्टिकोण का होना जरूरी हैं लेकिन ऐसे दृष्टिकोण की कमी उत्तराखंड में नजर आ रही हैं आज सरकार ने राज्य में विधानसभा क्षेत्रों का परिसीमन कर दिया है लेकिन ग्राम सभाओं का परिसीमन अभी तक नहीं हुआ है। जबकि उत्तराखंड राज्य आंदोलन की जब शुरूआत हुई थी उसमें ग्राम सभाओं का परिसीमन एक प्रमुख मुद्दा था। क्षेत्रीय जनता का कहना

था कि पहाड़ की स्थितियां मैदानी क्षेत्रों से भिन्न हैं इसलिए परिसीमन करते वक्त यहां की भौगोलिक स्थितियों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

जब जनता द्वारा चुनी हुई एसेम्बली का गठन हो तो इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जनता और सरकार के बीच की दूरी कम हो। विकास के लिए गांवों को केन्द्र में रखा जाय। सरकार के यह पता होना चाहिए कि किस इलाके की क्या जरूरत है। छोटा राज्य होने के कारण यहां पर सरकार को अधिकाधिक जनोन्मुखी बनाने की संभावनाओं का उपयोग किया जा सकता है।"

उत्तराखंड क्रांति दल के प्रवक्ता एवं पत्रकार **सुरेश नौटियाल** ने कहा कि "इस सत्र का जो विषय है उत्तराखंड, क्षेत्रीय पहचान, लोकतंत्र और राष्ट्र निर्माण के मुद्दे। मैं इसी बात से शुरू करना चाहूंगा कि हमें न तो उत्तराखंड मिला है, न तो हमारी क्षेत्रीय पहचान बनी, न तो हमें लोकतंत्र मिला। और इसलिए राष्ट्र निर्माण की जो बातें है उसमें हमारा कंट्रीब्यूशन अभी तक शुरू नहीं हो पाया।

यह खुशी की बात होती है बहुत सारे लोगों के लिए कि उत्तराखंड को अलग एक विशेष दर्जा मिल रहा है। लेकिन मेरी निजी राय है कि वह दर्जा हमारे उत्तराखंड राज्य को नहीं मिलना चाहिए। इस पर मेरा मत है कि जिस तरह से हमारे देश के पूर्वोत्तर भाग में जो राज्य है छोटे–छोटे, सेवन सिस्टर्स जिनको बोला जाता हैं। उनमें बहुत सारे राज्यों को, जम्मू–कश्मीर को, और जितने पर्वतीय राज्य है उन सभी को विशेष राज्य का दर्जा है और विकास की दृष्टि से यदि आप देखें तो यह सभी राज्य पिछड़े हैं। यानी हमारे राज्य को पिछड़े राज्यों की श्रेणी में खड़ा करने का एक प्रयास हो रहा है।

राजधानी के मामले में बहुत सारे साथियों ने कहा कि 1992 से ही उत्तराखंड क्रांति दल ने चन्द्रनगर को राजधानी घोषित किया था चंद्रसिंह गढ़वाली जी के नाम पर। और इस पर कोई असहमति नहीं थी। जो बड़ी पार्टियां अपने आपको राष्ट्रीय पार्टिया कहती है। कांग्रेस या भारतीय जनता पार्टी उनके नेताओं ने भी इस बात का विरोध नहीं किया। लेकिन जिस तरह से देहरादून में लाव–लश्कर खड़ा किया जा रहा है। हवाई पट्टी बनाई जा रही है। बड़े–बड़े बंगले बन रहे है। बहुत कुछ बन रहा है। मैं इसको एक साजिश की तरह देखता हूं। मुझे साफ नजर आ रहा है कि राजधानी देहरादून हमेशा के लिए बनाया जाएगा यह एक षड्यंत्र है। नाम का मामला है। हमारी लड़ाई उत्तराखंड के लिए थी। तमाम जनता का नारा उत्तराखंड था। और हमें उत्तरांचल दे दिया गया। हमारे बहुत सारे साथी कहते हैं कि नाम में क्या रखा है? उत्तरांचल भी तो अच्छा नाम है। हमने कब कहा कि उत्तरांचल खराब नाम है? मेरा नाम अगर किसी वजह से गरीबदास है तो मैं अमीरदास नाम कभी पसंद नहीं करूंगा। चाहे मेरे पास कितनी भी संपत्ति आए। लेकिन उत्तराखंड जो किताबों में है, संस्कृति में है, हमारी सभ्यता में है, पुराणों में भी है। उसका नाम इन लोगों ने बदल दिया। हमारे एक आंदोलनकारी साथी है पुरुषोत्तम जी। उन्होंने एक लेख में लिखा भी था कि उत्तराखंड तो उत्तरा का एक क्षेत्र है, देश है। उत्तरा का देश के मैं दो अर्थ लगाता हूं। एक उत्तरा जो अभिमन्यु की पत्नी थी। वह वहां की रहने वाली थी। और दूसरा उत्तरा इसलिए भी मैं कहूंगा कि उत्तरा महिलाओं का प्रदेश है। उसमें चाहे कोई भी संघर्ष हो, चिपको आंदोलन हो, नशा विरोधी आंदोलन रहा हो, उत्तराखंड राज्य आंदोलन हो उसमें महिलाओं की बहुत बड़ी भागीदारी रही है।

मैं एक बात और कहना चाहूंगा कि महिलाओं के अलावा समाज के तमाम लोग इस आंदोलन में थे। शायद पहली बार इस देश में ऐसा हुआ जब सरकारी कर्मचारी बिना किसी भय के, बिना किसी डर के पूरे आंदोलन में कूदे। लंबे समय तक वह लोग अपने दफ्तरों में नहीं गये। तो एक जन आंदोलन की इससे मुखर और बेहतर स्थिति क्या हो सकती है?

हमारी लड़ाई अभी जारी है। जब तक उत्तराखंड नाम नहीं हो जाता। राजधानी गैरसैंण नहीं हो जाती। और जो हमारे संसाधन है उन पर हमारे राज्य का अधिकार नहीं हो जाता। तब तक यह संघर्ष जारी रहेगा। इसके लिए हमें इन गोष्टियों से बाहर जाकर फिर एक बार सड़कों पर हमेशा की तरह जाना चाहिए। उसका हमारे सब साथियों को अच्छा अनुभव है।

समाज और भाषा की भी बात मैं करूंगा। उत्तराखंड में मूलरूप से हमारी चार सामाजिक इकाईयां है– गढ़वाल, कुमाऊँ, जोनसार, भाबर है। और उसमें बहुत सारी छोटी–छोटी सामाजिक इकाइयां भी हैं। हम मोटे तौर पर गढ़वाल और कुमाऊँ की बात करते हैं। लेकिन यह गलत बात है। मेरा मानना है कि सांस्कृतिक तौर पर जोनसार बिल्कुल अलग इकाई है। और हमें उसको उसी तरह से देखना चाहिए। और उसको वैसा ही ट्रीटमेंट भी मिलना चाहिए। ऐसे ही हमारा जो गैर पर्वतीय इलाका है वह भी उत्तराखंड का समाज है। उत्तराखंड के लोग हैं उनकी भी अपनी कुछ आकांक्षाए होंगी। इसलिए उनकी ओर भी हमें ध्यान देना चाहिए। लेकिन एक बात मैं इसमें जरूर जोड़ना चाहूंगा। सिर्फ अपने फायदे के लिए जो लोग उत्तराखंड में अपने होटल बगैरह चलाने के लिए जाना चाहते है उनको वहां आने नहीं दिया जाना चाहिए। जो समाज की सेवा करना चाहते है जो अपने क्षेत्र की सेवा करना चाहते उनका स्वागत हैं ऐसे लोगों को आर्टिकल 371 से डरने की कोई जरूरत नहीं है।

हमारा उत्तराखंड राज्य आंदोलन एक लोकतांत्रिक आंदोलन रहा है। हमें मालूम है कि इस आंदोलन में बहुत सारी अप्रिय घटनाएं हुई। लेकिन हमने इसके बावजूद सारी चीजों को दबाया। और कभी प्रकाश में नहीं आने दिया। क्योंकि हम अपने आंदोलन को कभी भी सांप्रदायिक रूप नहीं देना चाहते थे। पहाड़ी, गैर पहाड़ी के जो सवाल थे उनको हमने कभी आगे नहीं आने दिया। और हमारा जो गैर पहाड़ी समाज है उत्तराखंड का दुर्भाग्य यह है कि वह आंदोलन में पूरी तरह से कभी सक्रिय नहीं रहा। लेकिन उसके बावजूद आज उनका उतना ही सम्मान है जितना की बाकी तमाम लोगों का है।

अभी डोमिसाइल का जो सवाल है वह बड़ा अहम सवाल है। इस सवाल को लेकर पूरे पहाड़ में डिबेट हैं। मैं 1974 से उत्तराखंड आंदोलन का किसी न किसी रूप से हिस्सा रहा हूं। लेकिन आज यह स्थिति है कि मैं उत्तराखंड का नागरिक नहीं बन सकता हूं। पिछली बार गांव गया था यह जानने के लिए कि मैं यहां आकर नागरिक कैसे बन सकता हूं। यहां का वोटर कैसे बन सकता हूं। तो उन्होंने 27 था 29 शर्तें लगा रखी है। उनको पूरा करने के बाद ही कोई वहां का नागरिक बन सकता है। यह बड़ा दुर्भाग्य है। हमारे साथी जो पहाड़ से आए हुए है, जो वहीं रहते है, मैं उनसे आग्रह करता हूं कि इस मसले को उठाएं। जो पहाड़ की जनता बाहर रहती है और जो फिर से वहां का नागरिक बनना चाहती है। नागरिक इन द सेंस कि वहां का वोटर बनना चाहती है उसका कोई रास्ता निकाला जाना चाहिए।

मेरे अपने गांव में जमीन है, घर है, सब कुछ है। मेरी मां वहीं रहती है। मैं लगभग हर महिने वहां जाता हूं लेकिन मुझे वहां की नागरिकता नहीं दी जा रही है। क्या मेरा उस आंदोलन में कोई कंट्रीब्यूशन नहीं है? सवाल यह नहीं है कि मैं सुरेश नौटियाल की हैसियत से बोल रहा हूं। वह दिल्ली का रहने वाला कोई भी नागरिक हो सकता है जिसने जंतर–मंतर पर धरना दिया। लाठी खायी और उत्पीड़न झेला, आर्थिक संकट से भी गुजरना पड़ा, तमाम बातें हुई।

साथियों, जो गैरसरकारी और स्वयंसेवी संगठन है। उत्तराखंड की जब हम बात करते है। उसके विकास की बात करते है। तो मेरा मानना है कि हमें इन संगठनों की भूमिका के बारे में पूरी तरह से स्पष्ट होना चाहिए। मेरा मानना है कि किसी भी समाज को आगे ले जाने में स्वयंसेवी संस्थाओं का

बहुत बड़ा योगदान होता है। लेकिन विश्व की जो मल्टीनेशनल एजेंसीज है और हमारे गवर्नमेंट की जो एजेंसीज है। उन्होंने तय कर दिया है कि समाज का विकास होगा तो वह एन.जी.ओज. के थ्रो ही होगा। मेरा व्यक्तिगत तौर पर मानना है कि इस अवधारणा से मैं सहमत नहीं हूं। फिर भी जो स्वयंसेवी संगठन उत्तराखंड में अच्छा काम कर रहे है। हमारे पवन गुप्ता जी यहां बैठे भी है। एक संगठन वहां पर वह चलाते भी है। और यह अच्छा संगठन है। और बहुत सारे साथी वहां ईमानदारी से काम कर भी रहे है। लेकिन वहां 'सहयोग' जैसे संगठन भी चले जाते है जो समाज को नीलाम कर ब्लैकमेल कर और उसकी गलत छवि पेश करके पैसा बनाना चाहते है। तो ऐसे संगठनों की पहचान भी बहुत जरूरी है। उत्तराखंड से ऐसे संगठनों को निकाल बाहर किया जाना चाहिए। मैं जानता हूं कि अकेले देहरादून में 200 स्वयंसेवी संगठन है जो पहाड़ में कोई काम नहीं करते हैं। और जब उनको कहीं से ऐड मिलता है तो कभी बेटी की शादी करते है, कभी बेटे की शादी करते हैं। या कभी अपनी दुकान खड़ी करते है या कोई भवन बनाते है। तो ऐसे पारदर्शिता बहुत जरूरी है। इसके लिए एक अभियान भी छेड़ा जाना चाहिए कि जितने एन.जी.ओज. है वह आवश्यक तौर पर अपने आय–व्यय का ब्यौरा समाज के सामने रखें। और यदि ऐसा करते है तो वह भी समाज की सेवा होगी।

महिलाओं का सवाल है। मैं पहले भी कह चूंका हूं कि महिलाएं उत्तराखंड के समाज की रीढ़ की हड्डी हैं। पांच–पांच किलोमीटर दूर जाकर पानी लाना। उतनी ही दूर जाकर घास–लकड़ी लाना। और इसके बाद बच्चों को स्कूल भेजना। और पूरे घर का काम करना। मुझे याद आता है मैं गांव में ही पला हूं इसलिए मुझे मालूम है। मुझे कभी यह पता नहीं होता था कि मेरी मां रात को कब सोती थी और सुबह कब उठती थी? इतना जरूर है कि जब सुबह तीन–चार बजे वह उठती थी तो मेरी नींद खुलती थी। यह केवल मेरी मां नहीं है, हम सब लोगों की मां का इस तरह का संघर्ष रहा है। इसलिए मेरा मानना है कि उत्तराखंड में जो भी सरकार बनती है, परिसीमन जिस तरह से भी होता है। 50 प्रतिशत सीटें महिलाओं को कम से कम देने की आवश्यकता है। तभी हमारा मातृशक्ति के प्रति सम्मान होगा।

एक और बात मैं कहना चाहता हूं कि हम उत्तराखंड की राजनीति में क्यों पिछड़ गए? क्यों कि हमने विधान सभा चुनाव का बहिष्कार किया था। लोकसभा चुनाव का बहिष्कार किया था। जो 1995–96 में कब हुएं थे मुझे याद नहीं आ रहा। तो अब भी जो संगठन उत्तराखंड के चुनाव की राजनीति से अलग होना चाहते हैं, मैं उनसे एक आग्रह करना चाहता हूं कि उस पर वह पुनर्विचार करें। सब लोग एक मोर्चे के साथ आएं। तभी हमारे हाथ में राजनैतिक सत्ता आएगी तभी हम यह बता पाएंगे कि हम किस तरह का उत्तराखंड चाहते है।"

श्री पवन कुमार गुप्ता का कहना था कि "पिछड़ेपन और विकास के बारे में मान्यता और वास्तविकता दोनों ही भिन्न है। विकास क्या है? यह तो एक अमूर्त चीज है। कोई भी सिस्टम जो हम डेवलप करते है वह दूसरों की नकल करके करते है। जो भी कोई मॉडल लाना है वह वेस्ट की ओर से ही लाना है। क्योंकि विकास तो उन्हीं का हुआ है। हम तो पिछड़े हैं। तो फिर उनसे सारा कुछ इम्पोर्ट करके हम विकसित होंगे। हम बात कर रहे थे मूर्त और अमूर्त की। मूर्त में तो बहुत अच्छी बात हैं जो भी कुछ हम रखेंगे उसको हम यहां पर नकल करेंगे। हम इसी जाल में फंसे हुए है। मान्यता एक तरफ और वास्तविकता दूसरी तरफ। मान्यता एक तरफ और व्यवहार दूसरी तरफ। भ्रष्टाचार तो व्यवहार में आता है। भ्रष्ट सिस्टम बनाता है। भ्रष्ट कोई व्यक्ति नहीं बनना चाहता है। उसके लिए गौत्तम बुद्ध प्रयास करेंगे। शंकराचार्य जी प्रयास करेंगे। मौलाना जी कोई प्रयास करेंगे। आप लोग तो सब सेकुलर लोग हैं यहां पर। सब सेकुलर लोग है उसके लिए वह लोग सब करेंगे। हम तो सिस्टम की ही बात करेगे। सिस्टम हमें कैसे भ्रष्ट बनाता है या ईमानदार बनाता हैं। सिस्टम की ताकत को हम पहचानें। सिस्टम में हम जितनी

डिसेंट्रलाइजेशन की बात करते है उससे पता चलता है कि हम सेंट्रलाइजेशन को स्वीकार करते हैं। जब तक सेंट्रलाइजेशन रहेगा तब तक डिसेंट्रलाइजेशन भी रहेगा।

हम लोग क्यों नहीं ऑटोनॉमी की बात करते है? लोगों को दे दीजिए अधिकार, वह अपने आप करेंगे। कोई दूसरा क्यों बताए कि ऐसे शिक्षा ग्रहण करो, ऐसे साक्षरता करो वगैरह–वगैरह। उत्तराखंड छोटा सा स्टेट हैं यह हम प्रयोग करके क्यों नहीं देखते कि जैसे अभी कमला जी ने कहा कि पौड़ी में यह उठ गया कि हम अपना करेंगे, तो यह तो अच्छी बात हैं। हर चीज शुभ लक्षण है यदि ऐसा हो गया तो। हर जगह आप लोगों के पास अधिकार दे दीजिए। मैं सोचता हूं कि इस चीज से हमारा विकास होगा।"

श्री चन्द्र बहादुर टम्टा ने कहा "मुझे दुख होता है कि दलितों की बात कोई नहीं करता। शंकाएं दलितों के मन में तब भी थी जब उत्तराखंड राज्य नहीं बना था। और आज भी है। और ज्यादा मजबूत होती जा रही है। धार्मिक कट्टरता भी वर्तमान सरकार में बढ़ती जा रही है। हिंदू जागरण मंच को हम कैसे रोक पाएंगे? श्री टम्टा का यह भी कहना था कि जन प्रतिनिधियों द्वारा सही काम न किए जाने पर जनता के पास उन्हें पदच्युत करने का अधिकार भी होना चाहिए ।

श्री प्रेम बहुखंडी ने दिल्ली में रह रहे प्रवासी उत्तराखंडियों के बीच उत्तराखंड से संबंधित एक इन्फार्मेशन सेंटर विकसित करने का सुझाव रखा। उन्होंने उत्तरांचल राज्य के गठन के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए अपनी असहमति भी दर्ज करायी कि "आप लोग उसे आंदोलन की जीत मानते है। लेकिन मैं उसे जीत नहीं मानता हूं। इसका कारण यह है कि अगर आंदोलन नहीं भी होता, राज्य ने बनना था। उसकी वजह वर्ल्ड बैंक की थ्रीट थी कि बिमारू स्टेट्स में एडमिनिस्ट्रेटिव रिकंस्ट्रक्शन किया जाय। इसमें तीनों राज्य जो बने है वह सारे बिमारू स्टेट्स में है। चाहे मध्यप्रदेश हो, उत्तर प्रदेश हो या बिहार हो। इसमें ना तो हमारा कोई योगदान है ना तो हमारे किसी नेता का ना आंदोलन का।"

श्री प्रभात ध्यानी का कहना था कि "क्षेत्रीय पहचान तथा उत्तराखंड के विकास के मुद्दे को लेकर ही वहां के लोगों ने उत्तराखंड राज्य की मांग की थी। वर्षों तक लोकतांत्रिक ढंग से अपने आंदोलन को उन्होंने चलाया। चालीस से ज्यादा लोगों ने शहादत दी। मुजफ्फर नगर में तत्कालीन उत्तर प्रदेश की सरकार ने हमारी मां–बहनों की अस्मिता के साथ खिलवाड़ किया। लोगों की अपेक्षा थी कि पहाड़ का जो उपेक्षित गांव है, वहां पर रहने वाली हमारी जो मां–बहने है, वहां का जो छात्र है नये राज्य में उसके सपने पूरे होंगे। रोजगार मिलेगा, मां–बहनों की तकलीफें दूर होंगी और उनको क्षेत्रीय पहचान मिलेगी। लेकिन इतने लंबे संघर्ष, बलिदान देने के बाद भी केंद्र सरकार और राष्ट्रीय पार्टियों ने उत्तराखंड के लोगों का कदम–कदम पर अपमान किया। लोगों ने क्षेत्रीय पहचान के लिए उत्तराखंड राज्य की लड़ाई लड़ी। लेकिन पाया उत्तरांचल।

उत्तराखंड के लोगों की मांग थी कि आम आदमी को केंद्र मानकर हमारी राजधानी की मांग पूरी हो। वहां के लोग चाहते है कि आज तक दिल्ली और लखनऊ ने जो उत्तराखंड के गांवों की जो उपेक्षा की वह अब न हो सके। लेकिन जो दिल्ली और लखनऊ में रहकर समझते थे कि देहरादून, नैनीताल, मसूरी ही उत्तराखंड है उन्होंने ही देहरादून की चमक–दमक देखकर वहां राजधानी बनायी।

हमारा कहना है कि उत्तराखंड हमें नहीं दिया। राजधानी नहीं दी। और एक ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल बना दिया उत्तराखंड राज्य की विरोधी जिसकी पार्टी थी और आज भी उत्तराखंड राज्य का विरोध करती है। तो हमारा कहना है कि कदम–कदम पर उत्तराखंड के लोगों के साथ घोर अपमान हुआ। और आज भी कदम–कदम पर अपमानित करने की कोशिश हो रही हैं। उत्तराखंड

आंदोलन के जो मुकदमें है उसमें देखा जा रहा है रक्षा समिति जिसने उत्तराखंड आंदोलन के खिलाफ आंदोलन खड़ा किया उनके मुकदमें वापस हो गये। भाजपा के जो लोग थे उनके मुकदमें वापस हो गये। लेकिन जो उत्तराखंड के आंदोलनकारी संगठन थे, उनके मुकदमें अभी तक वापस नहीं हुए। तो उपेक्षा आज भी जारी है।

इसमें कोई भ्रम नहीं कि हम कांग्रेस–भाजपा को, उनकी जो जन विरोधी नीतियां है उनको कदम–कदम पर शिकस्त देने में पूरी तरह से समर्थ है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि हमारे जितने आंदोलनकारी संगठन है वह आपस में कोई समन्वय नहीं कर पा रहे हैं। हमने कोशिश भी की, उत्तराखंड के तमाम आंदोलनकारी संगठनों की समन्वय समिति बने और एक राजनैतिक विकल्प बने। क्योंकि जब तक हम एकजुट नहीं होते तब तक हम सफल नहीं हो पाएंगे।"

पत्रकार **श्री खड़क सिंह खनी** ने उत्तराखंड के पिछड़ेपन के लिए कांग्रेस और भाजपा को मुख्य रूप से जिम्मेदार माना तथा उत्तराखंड की अर्थ व्यवस्था को मनी आर्डर व्यवस्था कहे जाने का भी विरोध किया। उनका कहना था कि "उत्तराखंड में ही नहीं पूरे देश में जो कांग्रेस 45 वर्ष तक राज कर चुकी थी या जो भाजपा 90 के बाद या 77 के बाद जनता पार्टी और जो जनसंघ सत्ताशीन हुई थी, कुल मिलाकर उत्तराखंड की बदहाली के लिए यही दल जिम्मेदार थे। लेकिन जो हमारे आंदोलन के नेता थे वो लोग इनको नहीं समझ पाये। और इनके जाल में फंस गये। आंदोलन के समय जो संयुक्त समितियां बनी उन संयुक्त समितियों में इनको तारगेट करने के बजाय, इनको लीडरशीप में महत्व दिया गया और लीडरशीप इनके हाथ में चली गयी। नतीजा यह हुआ कि आगे चलकर इस लड़ाई के चैम्पियन यही बने और चुनाव में भी यही दिखाई दिया कि उत्तराखंड से भारी बहुमत से जीते है। तो कहने का मतलब यह है कि यही पूरी ताकतें जन विरोधी ताकतें है। तो ऐसे में आप कल्पना नहीं कर सकते कि बेहतर उत्तराखंड होगा। बेहतर उत्तराखंड के लिए बिष्टजी ने एक बात कही थी, क्योंकि मैं शुरू से ही आंदोलन में रहा हूं। बिष्ट जी ही हमारे नेता तब के दौर में थे। 76 में उन्होंने एक बात कही कि हमारी लड़ाई वन और खन संपति को लेकर है। लेकिन दिल्ली में बैठे बुद्धिजीवियों ने, आप और हम जैसे इन लोगों ने इस लड़ाई को भटका दिया। किसी ने इसको चिपको नाम दिया। किसी ने इसका मुद्दा बदलने के लिए मनीआर्डर इकोनॉमी का नाम दे दिया। मनीआर्डर इकोनॉमी से भी मैं परहेज करता हूं। वो इसलिए क्योंकि मनीआर्डर इकोनॉमी जो पहाड़ की बताते है तो पूरे मुद्दे को ही भटका देते हैं। यह एक साजिश के तहत किया गया। मूलरूप से पहाड़ की इकोनोमी आज भी खेती है। कृषि है। हमने तकरीबन 92 गांव का सर्वे किया था। हमने सर्वे में यह लिया कि इस गांव में कितने परिवार है। टोटल परिवारों में कितने ब्राह्मण है और कितने ठाकुर। और कितने हरिजन व शिल्पकार। तो ये भी उसमें था। और कितने लोग सरकारी नौकरी में है। अलग–अलग क्षेत्र के गांव थे। वो मुश्किल से 200 परिवार का गांव है। 2 या 3 लोग सरकारी नौकरी में थे, 5–7 लोग जो गैर सरकारी नौकरी में दिल्ली आये होटलों–ढाबों में बर्तन मांजे; दो–तीन महीने में घर चले गये। या इंडस्ट्री में कही अस्थायी तौर पर नौकरी करते रहे। यानी कहने का मतलब यह है कि बहुसंख्यक आबादी खेती पर निर्भर थी और आज भी है। चूंकि कृषि है कहने में आपको लड़ाई कृषि पर ही केंद्रित करनी पड़ता, जंगल और जमीन का सवाल उठाना पड़ता।

शमशेर सिंह बिष्ट जी ने कहा, जंगल और जमीन ही पहाड़ की नागरिकों का मुख्य मुद्दा होना चाहिए। लेकिन जो हमारे सरकार परस्त बुद्धिजीवियों ने कह दिया कि मनीआर्डर इकोनामी है। उन्होंने पहाड़ का पूरा कंसेप्ट ही बदल दिया। यानी अपने लोगों को प्रेरित किया कि यहां की व्यवस्था मनीआर्डर इकोनामी है, तथा आप भी नौकरी कीजिए। नहीं तो भूखे मरोगे। आज आपको कह रहे है कि पहाड़ों से पलायन हो रहा है और गांव खाली पड़ गये है। 75 से लेकर आज तक इन 25 सालों में इसे इतना प्रसारित किया गया है कि लोगों के दिमाग में ये बात जमा दी गयी है

कि आप घर में रहेंगे तो भूखे मरेंगे। क्योंकि यहां की व्यवस्था मनीआर्डर इकोनामी है। आपको बाहर जाना है। नौकरी करनी है। और 400–800 रुपये महीना भेजना है। मैं जहां भी जाता था इस बात को कहता था। गांव वालों ने भी हमेशा यह कहा था कि जमीन मिल जाय तो हमें रोटी–रोजी के लिए बहुत ज्यादा संकट नहीं पड़ेगा। क्योंकि अधिकतर लोग वहां अर्द्धमजदूर, अर्द्धकिसान थे। 6 महीने खेती–बाड़ी का काम किया, 4–6 महीने लीसा निकाला या ठेकेदारों के घरों में काम किया। रोड बना ली। या लीसा, लकड़ी से अपनी जीविका चलाते थे। लोगों कि ये डिमांड थी कि हमें जमीन मिलनी चाहिए। उत्तर प्रदेश सरकार का मानना था कि जिस किसान के पास 60 नाली से नीचे जमीन है वह भूमिहीन की श्रेणी में माना जाएगा। तो तब मुख्य लड़ाई यह होनी चाहिए थी कि हमें 60 नाली जमीन मिले।

बहुत से पर्यावरणवादी साथी, जिन्होंने इस लड़ाई के डर से, चिपको आंदोलन नाम दे दिया, उन्होंने ही यह सवाल उठाना शुरू कर दिया कि साहब जमीन कहां से आएगी? धस्माना जी ने बताया आज भी हमारे पास 2 तिहाई जमीन और वन है। तो आज उत्तरांचल में जमीन के पुराने संबंधों को खारिज करते हुए नया भूमि कानून बनाना चाहिए। और प्रत्येक आदमी को 60 नाली जमीन दी जानी चाहिए। अब सवाल है कि लोग कहेंगे कि पहाड़ में खेती नहीं होती क्या करोगे 60 नाली जमीन लेकर? हमारा दावा है खासतौर पर आप सभी लोगों ने देखा होगा कि पहाड़ की जमीन तराई की जमीन से कई मायनों में उपजाऊ है। तराई में आप केवल गेहूं, धान ही उपज कर सकते है। गांजा पैदा कर सकते है। 20 नाली में आप ज्यादा से ज्यादा 20 बोरे धान पैदा कर सकते है। जो ज्यादा से ज्यादा आपका 10 हजार का होगा। और पहाड़ में अगर आप 20 नाली में आलू बो दें तो 40 बोरा होगा और कम से कम 20 हजार रुपये का होगा। तो खेती गेहूं, धान ही नहीं है। खेती आलू भी है। और जहां सेब होते है वहां सेब के बगीचे डेवेलप कीजिए। जहां नाशपाती होते है वहां नाशपाती के, और जहां आम व अमरूद उस तरह के घाटी क्षेत्रों में उन्हें पैदा कीजिये। कुल मिलाकर मैं कहना यह चाह रहा हूं कि जब तक इन सवालों को नहीं उठाया जाएगा तब तक बेहतर उत्तराखंड नहीं बन सकता और इस तरह के सवाल उठाने वाले लोग राजनीति में एकदम पिछड़ते चले गये। कम से कम जो जनपक्षी सोच रखने वाले थे या राजनैतिक दल थे वे एकदम पीछे हो गये। तो आज संघर्षों की ताकतों को एकजूट होने की जरूरत है और वो पूरे संस्कार के साथ और विकास की रूपरेखा के साथ एकजुट हो जाए और नये राजनैतिक दल की शुरूआत कर दे। वहीं कांग्रेस और बी.जे.पी. को मात दे सकते हैं। इनके कुशासन से आपको मुक्ति दे सकते है।"

समाजवादी नेता श्री सुरेन्द्र मोहन ने कहा कि "आपको अपनी नीति स्पष्ट करनी है। जहां तक वनों का सवाल है, शायद आप लोग जानते है कि ये वर्ल्ड बैंक की योजना है और उन्होंने मध्य प्रदेश में एक वननीति का काम शुरू किया था। लेकिन वहां एक भारी विरोध हुआ उसको उनको बंद करना पड़ा। पूरे देश में वनों में काम करने वाले लोगों का अपना एक संगठन है। आपके हेमगैरोला तो नागपुर में गये थे। उस लड़ाई में शामिल होकर भी उत्तराखंड की वनों की जो परिस्थिति है उस पर आपको अपनी नीति बनानी चाहिए। आपके वहां वन पंचायत संगठन एक बड़ा मजबूत संगठन है। उसके संबंध में एक स्पष्ट नीति बनाकर वह लड़ाई भी आपको लड़नी पड़ेगी।

मैं यह समझता हूं कि इसके अलावा नशाबंदी की लड़ाई आप लड़ ही रहे हैं। जो उसमें शामिल है उनको मुबारकवाद देता हूं। राजधानी की लड़ाई भी आप लड़ रहे है – गैरसैंण राजधानी बने। ये बात सही है कि एक षड्यंत्र के तहत राजधानी देहरादून को बना दिया गया। ये लड़ाई भी आपको लड़नी ही पड़ेगी। और मुकदमों की बात अपनी जगह है ही। जब भी मौका मिला तो इस आवाज को बराबर उठाते रहें। जो दोषी है उनको सजा मिले और जिन पर गलत मुकदमें है उनको खत्म

कर दिया जाय। पर अंतिम बात पंचायतों के संबंध में, पंचायतों के संबंध में खासतौर पर क्या करना है। क्या करना चाहिए। क्योंकि आपकी विधान सभा पंचायतों की भी हक बंदी करेगी। आप ग्रामसभा के आधार पर अपनी ग्राम पंचायत बनायें। जहां–जहां वन पंचायत रही है उस इलाके को आप अलग से मान्यता दें। इन सवालों पर आपको विचार करना पड़ेगा। लेकिन इस बात को जरूर ध्यान में रखें कि वैश्वीकरण के दौर में केंद्रीकरण का इतना दबाव है कि विकेंद्रीकरण की लड़ाई चाहे वनों को लेकर हो जल को लेकर, पंचायतों को लेकर हो, ये व्यापक लड़ाई आपको लड़नी है। और जब कभी चुनाव होंगे और चुनाव में हिस्सा लेंगे तो मेरे ख्याल से तो इन बातों को सामने रखकर, इनको प्रमुख मुद्दे बनायें। ताकि जनता इस बात को समझे कि उसका भविष्य, उत्तराखंड का भविष्य इस चुनाव के साथ ही है। आप आंदोलन और चुनाव की रणनीति को बहुत दूर तक अलग–अलग नही कर सकते। जो संघर्ष करेंगे या जो संघर्ष करते रहे है उनको भी चुनाव में आगे रहना चाहिए। मैं ये नहीं कह रहा हूं कि आप चुनाव लड़ेंगे और जीतेंगे। मैं जानता हूं कि धन का इतना बड़ा इस्तेमाल करेंगे भाजपा और कांग्रेस कि उन्हें एक–एक क्षेत्र में 50–50 लाख रुपये खर्च करने में कोई दिक्कत नहीं होगी। इसलिए अगर 5–6 महीने में जन आंदोलन इतना ज्यादा सशक्त आंदोलन नहीं बनेगा जैसाकि आपातकाल के जमाने में आंदोलन था या आजादी का आंदोलन था, तब तक जो धन के आधार पर लड़ाई लड़ेंगे उनसे आप नहीं जीत सकेंगे। इस बात का आपको जरूर ख्याल रखना होगा। इसलिए आंदोलन जितना ज्यादा तेज होगा उतना ही चुनाव की तैयारी भी होगी। यह बात मैं आपको बहुत विनम्रता के साथ कहता हूं। मैं ये नहीं कह रहा हूं कि मेरी बात मानिये, मैं तो केवल अपने विचार आपके सामने व्यक्त कर रहा हूं।

एक और बात पूरे देश में, पूरे विश्व में जो हो रहा है वह आपने देखा। सिएटल में देखा। अभी इटली में नेटो का सम्मेलन था वहां भी बहुत लोग पहुंचे, विरोध करने के लिए। वहां पुलिस ने बर्बरता का बहुत बड़ा प्रमाण दिया। लोगों को बहुत बुरी तरह से मारा। सम्मेलन खत्म होने के बाद भी मारा। तो दोहा में डब्ल्यू.टी.ओ. का जो सम्मेलन हो रहा है वहां भी कुछ इसी प्रकार का होगा। जो विकसित देश है उनकी पूरी तैयारी है कि जो क्षेत्र उनके हाथ से बाहर रह गये है, उनको भी शामिल करना है। उसमें पर्यावरण भी है, सेवायें भी हैं, इनवेस्टमेंट भी है, और उसमें खेती भी है, कृषि भी है। कृषि का मामला 1995 में नहीं हुआ था लेकिन इन चारों सवालों को वो डब्ल्यू.टी.ओ. की परिधि में लाना चाहते है। ताकि जितना हमला वो कर सकते है पूरी ताकत के साथ करें। अभी तक भारत सरकार मलेशिया, पाकिस्तान, ब्राजील इन लोगों ने काफी विरोध किया है। लेकिन मैं नहीं जानता हूं कि भारत सरकार उसी तरह एक बार फिर पीछे हटेगी जैसे कि 1989 में जेनेवा में हटी थी जब राजीव गांधी के कहने पर भारत सरकार ने हथियार डाल दिये थे। प्रधानमंत्री जी ने अपने भाषण में कहा कि हम डटे रहेंगे उससे लगता है कि अगर डटे रहेंगे तो कोई बात बनेगी। लेकिन दबाव बहुत ज्यादा है।

पूरे देश में इन परिस्थितियों को लेकर और जो दूसरी परिस्थितियां है उनको लेकर आंदोलन हो रहे है मेरे ख्याल से आप में से काफी लोग आंदोलन के बारे में जानते होंगे मैं थोड़े में इतना कहूं कि राजस्थान में सूचना के जन अधिकार को लेकर एक बड़ा आंदोलन अरूणा राय के नेतृत्व में हुआ। उन्होंने अपना सम्मेलन किया था उस सम्मेलन में 300 जनसंगठनों के प्रतिनिधि पहुंचे थे। और अब उनकी कोशिश यह है कि इसको ज्यादा से ज्यादा बढ़ाया जाय। राजस्थान, मध्यप्रदेश, तमिल नाडू, महाराष्ट्र जैसे 5–6 राज्यों ने सूचना का जन अधिकार का कानून बनाया है। लेकिन वो इतना रद्दी कानून है कि उसके खिलाफ भी लड़ना जरूरी है। यहां भी जो मसविदा केंद्र सरकार ने बनाया है, वह भी बड़ा खराब दस्तावेज है। उसके खिलाफ भी लड़ना जरूरी है। लेकिन ये लड़ाई चल रही है। एन.ए.पी.एम. नाम की संस्था शायद आपने सुना होगा, जन आंदोलनों का राष्ट्रीय

समन्वय – उसमें मछुवारो का भी संगठन है। उसमें नर्मदा बचाओं आंदोलन वाले लोग भी है, समाजवादी जनपरिषद और भी कई आंदोलन इसमें शामिल है। वो लोग अपनी लड़ाई बराबर लड़ते रहते है और उनका फैसला है कि 18 नवंबर से एक अनिश्चितकालीन आंदोलन करेंगे उस आंदोलन की रूपरेखा क्या होगी, 20, 21, 22 सितंबर को उनका एक सम्मेलन सेवाग्राम में होगा उसमें उसको एक अंतिम रूप देने की कोशिश करेंगे।

अभी कुछ दिन पहले दिल्ली में बाइस संगठनों ने मिलकर ग्बोलाइजेशन के खिलाफ सम्मेलन किया था और उसमें 'पीपुल्स कम्पेन अगेंस्ट ग्लोबलाइजेशन' बनाया। उसमें अरूणाराय और उनके साथी भी है। सर्व सेवा संघ इत्यादि के भी लोग है। उसमें कोशिश की गयी है कि ज्यादा से ज्यादा जन संगठनों के प्रतिनिधि उसमें और शामिल हों। पीपुल्स औरगेनाइजेशन के साथ किसानों के अपने आंदोलन चल रहे है। क्योंकि आप जानते है कि जब से मात्रात्मक प्रतिबंध हटाये गये उसके बाद बहुत बुरी तरह खेती का जितना उत्पाद था उसके दाम गिरे है। मैं आपसे यह कह सकता हूं कि देश में कोई ऐसा इलाका नहीं है, कोई ऐसा बड़ा राज्य नहीं है जहां किसानों की बड़ी से बड़ी रैलिया न हुई हों। उनमें पोलिटिकल पार्टी के लोग भी है। उसमें ऐसे लोग भी गये है जिनका राजनैतिक दलों से कोई संबंध नहीं है। लेकिन किसानों का एक बड़ा भारी आंदोलन चल रहा है और इसी प्रकार मजदूर संगठनों के बारे में आप जानते हैं कि उन्होंने यहां एक बहुत बड़ा प्रदर्शन किया था 23 जुलाई को।

आदिवासियों का हाल और भी खराब है और वो भी अपनी लड़ाइयां जहां–जहां हो, लड़ रहे है। मध्य प्रदेश, उड़ीसा दोनों जगह तीन बार गोली कांड हो चुका है। उससे आप अंदाजा लगा सकते हैं कि उनकी लड़ाइयां भी कितनी तेज है। यह मैने इसलिए कहा कि पूरे देश में जो माहौल है वह माहौल गरमाहट का माहौल है। शांति का माहौल नहीं है। लेकिन हम यह जानते है कि हमारे मीडिया, हमारे समाचार पत्रों, हमारे दूरदर्शन पर पूंजीपतियों का और हमारी सरकार के लोगों का इतना ज्यादा दबाव है कि वे खबरें आती नहीं है। और अगर खबरें आती भी है तो कोचीन में कुछ हो गया तो तिरूअनन्तपुरम में नहीं छपती। बंबई और दिल्ली में छपने की कोई बात है ही नहीं। उदाहरण के तौर पर 11 अक्तूबर गये बरस को कोचीन के पूरे बंदरगाह में वहां के ट्रेड यूनियन ने और किसान नेताओं ने पाबंदी लगा दी कि नारियल का एक फल भी पानी के जहाज से नीचे नहीं उतरेगा। 24 घंटे पूरी पाबंदी रही। लेकिन हम जैसे लोगों को मालूम है पूरे देश में उसकी कोई चर्चा कहीं नहीं हुई ये मैं एक उदाहरण दे रहा हूं। एक दूसरा उदाहरण कि एक फरवरी को बनारस से लेकर जौनपुर होते हुए इलाहाबाद तक एक मानव श्रृंखला बनाने के लिए जिसमें स्कूल और इंटरमीडिएट कालेज के लड़के और लड़कियां थी बी.बी.सी. का कहना था कि उसमें पांच लाख लोगों ने भाग लिया। एक घंटे तक पूरी मानव श्रृंखला बनी रही। लेकिन आप जानते है कि बनारस के अलावा किसी अखबार में उसका जिक्र नहीं हुआ। रविन्द्र त्रिपाठी वहां गये, जो जनसत्ता के है और जनसत्ता में उन्होंने पूरी रिपोर्ट लिखी। आजादी बचाओं आंदोलन में इसको चलाया। मैं जल्दी–जल्दी इन बातों का जिक्र कर रहा हूं लेकिन मेरी आपसे प्रार्थना है कि अपने आंदोलन को ज्यादा तेज जरूर बनाये। और देश भर में जो आंदोलन चल रहे है उनकी भी जानकारी हासिल करते रहें। और उनमे भी शिरकत करते रहे तो मेरे ख्याल से बहुत ज्यादा अच्छा होगा।

अंतिम बात ये कि जो हमारे गांधी शांति प्रतिष्ठान में सचिव भी रहे है राजगोपाल, राजगोपाल ने पहले मध्य प्रदेश के उत्तरी इलाके में पूरब से लेकर पश्चिम तक एक 6 महीने की एक भूअधिकार सत्याग्रह यात्रा की थी। और अब वो बिहार में इसी प्रकार की भूअधिकार यात्रा 11 सितंबर से लेकर 11 अक्टूबर तक करने वाले है। इन बातों के अलावा हो सके तो अक्टूबर में दोहा के सम्मेलन से पहले हम डब्ल्यू.टी.ओ. के संबंध में एक अच्छा खासा सेमिनार करना चाहते है। जिसमें नेताओं को,

पोलिटकल पार्टियों को बुलाने की कोशिश करेंगे। और इस बात की भी हमारे दिल में तमन्ना है नवंबर के पहले हफ्ते में एक बड़ी किसान रैली हिंदुस्तान में करें। ताकि दोहा में जो ताकतें जमा होंगी उनके लिए एक चेतावनी हो कि हिंदुस्तान का किसान उनकी व्यवस्था को मंजूर करने को तैयार नहीं। एक बात और आपसे कहनी है कि सर्व सेवा संघ और दूसरे कई जन संगठनों ने मिलकर यह तय किया है कि एक सौ प्रमुख लोग उनके साथ दूसरे लोग भी शामिल होंगे। दस–दस लोग मिलकर तीन–तीन दिन का उपवास करेंगे राजघाट पर। और कोशिश करेंगे कि एक महीने तक यह काम चलता रहे। भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, केंद्रीकरण लेकिन सबसे बड़ी बात ग्लोबलाइजेशन। ये हमारे मुद्दे होंगे। यह अगला वर्ष 11 अक्टूबर 2001 से लेकर 11 अक्टूबर 2002 तक का वर्ष, जय प्रकाश नारायण का जन्म शताब्दी समारोह का वर्ष है। जय प्रकाश नारायण को जो सच्ची श्रद्धांजलि दी जा सकती है वह सच्ची श्रद्धांजलि यह भी है कि कश्मीर में शांति की कोशिश करें, जैसा उन्होंने किया। नागालैंड में शांति की कोशिश करे, जहां बागी डाकू है उनको अपने साथ लाने की कोशिश करे, विकेंद्रीकरण का काम करें। लेकिन सबसे बड़ी चुनौती यह है कि इतनी भारी लोक शक्ति का निर्माण करें कि इस व्यवस्था को परिवर्तित कर सके।"

उत्तराखंड लोक वाहिनी के अध्यक्ष **डा. शमशेर सिंह बिष्ट** ने उत्तराखंड में जनपक्षीय राजनीति की स्थापना के लिए जनआंदोलनों और चुनाव की राजनीति के बीच समन्वय करने की बात उठाई। उन्होंने चुनाव विरोध को गलत बताया तथा कहा कि सही राजनीतिक विकल्प के लिए आंदोलनकारियों को विधानसभा में भी पहुंचना चाहिए। चुनावों में जिस तरह धन बल और बाहुबल का प्रयोग है उसके खिलाफ आवाज उठाते हुए संघर्ष की पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशियों को विधान सभा में भेजने का प्रयास होना चाहिए।

उन्होंने कहा कि उत्तराखंड की राजनीतिक पार्टियों के जो ढांचे है उनमें लगभग 95 प्रतिशत ठेकदार भरे है। वह जनता के हितों को ध्यान में न रखकर अपने व्यवसायिक हितों को ध्यान में रखते हैं। इसलिए उत्तराखंड की राजनीति को सही दिशा देने के लिए ऐसे तत्वों को हाशिये पर डालना जरूरी है।

डा. बिष्ट ने आगे कहा कि भाजपा के प्रति उत्तराखंड की जनता में बहुत अधिक गुस्सा भरा है। क्योंकि वहां के मंत्रियों ने पूरी राजनीतिक संस्कृति उ.प्र. से उधार ली हुई है। वह जनता की समस्याओं को सुलझाने के बजाय अपने मंत्री होने का ठाट दिखाने में व्यस्त हैं। जनता क्षेत्र में लगातार बढ़ रहे वी.आई. पीज. के दौरों से तंग आ चुकी है। भाजपा के नेता अपने स्वार्थों के कारण ईमानदार अधिकारियों को परेशान कर रहे हैं। इस वजह से भी जनता में सरकार के प्रति आक्रोश है। डा. बिष्ट ने राज्य में कांग्रेस–भाजप के खिलाफ नये मोर्चे के गठन के संबंध में बताते हुए कहा कि हमारी चिंता सिर्फ विधायकों को विधान सभा में भेजना नहीं है। बल्कि कुछ ठोस मुद्दों के आधार पर हम मोर्चा बनाना चाहते है। जिसमें नशामुक्त उत्तराखंड का मुद्दा है। राजधानी गैरसैंण बनाने का मुद्दा है। उन्होंने मोर्चा निर्माण के अंतर्विरोधों का जिक्र करते हुए कहा कि उत्तराखंड विकास पार्टी के अध्यक्ष सुरेन्द्र पांगती शराब के मामले में बहुत स्पष्ट नहीं हैं तो राजधानी गैरसैंण बनाने के मामले में सपा छोड़कर उत्तराखंड जनवादी पार्टी बनाने वाले विधायक मुन्ना सिंह चौहान स्पष्ट नहीं बोल रहे हैं।

डा. बिष्ट ने उत्तराखंड में शराबबंदी की बात पर जोर देते हुए कहा कि वहां पर सिर्फ पीने–पिलाने की बात नहीं है, बल्कि शराब माफिया वहां गांव–गांव तक शराब पहुंचाकर वहां के माहौल को प्रदूषित कर रहा है। उत्तराखंड की महिलाएं शराब के कारण सबसे अधिक दुखी हैं। इसके अतिरिक्त शराब माफिया वहां सामाजिक, राजनीतिक हर तरह के कामों में अपने स्वार्थो के लिए पैसा लगा रहा है। इसलिए वैकल्पिक राजनीति के लिए शराब माफिया का विरोध करना भी एक केंद्रीय मुद्दा है। डा. बिष्ट ने राज्य में आर.एस. एस. की बढ़ती गतिविधियों और धर्मांधता फैलाने की राजनीति की तरफ इशारा करते हुए कहा कि कुमाऊं विश्वविद्यालय में भ्रष्टाचार के आरोपों के घिरे कुलपति वी.एस. राजपूत को फिर से कुलपति नियुक्त किया गया है। इसका एकमात्र कारण यही है कि वह आर.एस.एस. का आदमी है। जी.आई.सी. अल्मोड़ा में तीन दिन तक छुट्टी करके आर.एस.एस. की शाखा चलाने के प्रति भी उन्होंने लोगों का ध्यान आकर्षण किया।

डा. बिष्ट ने उत्तराखंड में क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को समझकर ही अपनी नीतियों को निर्धारित करने की बात कही। उन्होंने क्षेत्रीय संकीर्णतावाद का विरोध करते हुए कहा कि इस तरह का विचार हमें देश और दुनिया के सामने कटघरे पर खड़ा कर देगा। उन्होंने भाजपा द्वारा राज्य में ठाकुर और ब्राह्मण जाति का मुद्दा उछालकर मुख्यमंत्री चुनने की भी कड़ी आलोचना की तथा जातिवाद और क्षेत्रवाद के खिलाफ आवाज उठाने पर भी बल दिया। डा. बिष्ट ने राज्य बनने के बाद धनवान लोगों द्वारा क्षेत्र में बेहिसाब जमीन खरीदे जाने की तरफ भी इशारा करते हुए कहा कि यह वहां की जनता के हित में नहीं है।

उत्तराखंड महिला मंच की अध्यक्षा **श्रीमती कमला पंत** ने कहा था कि "सिर्फ वोट की राजनीति करने वाले लोगों को ही राजनीतिकर्ता माना जाता है। अन्य को तो राजनीति से कोई सरोकार ही नहीं होगा ऐसा माना जाता है। मुझे लगता है कभी किसी ने भी इस अवधारणाा को तोड़ने की कोशिश नहीं की। लेकिन उत्तराखंड में हम लोगों ने इसे तोड़ने की कोशिश की है। और नई राजनीतिक संस्कृति स्थापित करने का प्रयास किया है। कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि चुनाव में शामिल हुए बगैर उत्तराखंड को संपन्न कैसे बनाया जा सकता है? सत्ता के करीब से ही समस्त राजनीतिक गतिविधियां चलती हैं। आज भ्रष्टाचार का

जबरदस्त बोलबाला हर तरफ है। सुराजनीति ही भ्रष्टाचार पर अंकुश भी लगायेगी। इसलिए सवाल यह है कि जनता सत्ता के करीब कैसे पहुंचे। सत्ता जब तक जनता द्वारा नियंत्रित नहीं होगी तब तक भ्रष्टाचार कम नहीं होगा। आज उत्तराखंड में लोग तेजी से क्षेत्रीय दलों से जुड़ रहे हैं। उन्हें लगता है कि उत्तराखंड के भविष्य का निर्धारण ये क्षेत्रीय दल ही करेंगे लेकिन राष्ट्रीय पार्टियों के प्रति एक भ्रम उत्तराखंड में है वो चाहे कांग्रेस के प्रति हो या भाजपा के। राज्य बनने के बाद भाजपा के प्रति मोह भंग हुआ है लेकिन क्षेत्रीय दलों के प्रति जो एक साफ्ट कार्नर था वो भी कहीं न कहीं ठोस हो रहा है। सवाल यह है कि दोनों ही चाहे क्षेत्रीय दल हो या राष्ट्रीय, वोट की ही राजनीति करते है। वो भी कहते है कि हमें वोट देकर सत्तासीन करिये हम आपके सपनों का उत्तराखंड बनायेंगे। 53 वर्षों में सत्ता की राजनीति में क्रांतिकारी लोग भी गये पर कौन सा परिवर्तन कर पाये। व्यवस्था के चक्र में ही फंस गये।"

संघर्षशील ताकतें जब राजनीतिक दल बन जाते हैं तो वोट की राजनीति के खातिर वो कई मुद्दों पर साफ नहीं बोल पाती हैं। कांग्रेस, भाजपा या सपा का संस्करण बनकर उत्तराखंड में नई राजनीतिक संस्कृति नहीं पैदा की जा सकती है। उन्होने नया मोर्चा बनाने के प्रयासों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि वह महिला मंच की तरफ से मुजफ्फर नगर कांड के लिए मुन्ना सिंह चौहान को सबसे बड़ा दोषी मानती है जो तब सपा में थे। उन्होंने आगे कहा कि जब तक मुजफ्फर नगर कांड के दोषियों को सजा नहीं दी जाती तब तक राज्य मिलने का कोई औचित्य नहीं है।

श्रीमती पंत का अत्यधिक जोर जनआंदोलनों को बढ़ाने पर था लेकिन वह बार–बार चुनावी राजनीति से अलग रहने की बात पर भी जोर दे रही थी। उनका कहना था कि हमारे एक–दो प्रतिनिधि विधानसभा में पहुंचकर कुछ नहीं कर सकते है इसलिए जब तक हम जनआंदोलनों को इतना मजबूत न कर लें कि जनता हमें खुद विधानसभा में भेजने को आतुर हो जाय, तब तक हमें चुनाव नहीं लड़ना चाहिए।

श्रीमती पंत ने ग्लोबलाइजेशन की नीतियों के समानांतर लोकेलाइजेशन की नीतियां बनाने पर जोर दिया। इसके लिए उन्होंने पंचायतों और छोटी इकाईयों को मजबूत करने पर भी बल दिया। उनका यह भी मानना था कि उत्तराखंड राज्य जनसंघर्षों के परिणाम स्वरूप मिला है। पूर्व में भी क्षेत्र में जन आंदोलनों की परंपरा रही है। उन्होंने सवाल छोड़ा कि हम नई पीढ़ी के सामने आंदोलनों की परंपरा को छोड़ना चाहते हैं या सिर्फ चुनावी राजनीति की परंपरा छोड़ना चाहते हैं।

पत्रकार **श्री हरीश चंदोला** ने कहा कि आपने लोकतांत्रिक नव निर्माण की बात कही है। लेकिन उत्तराखंड में लोकतांत्रिक स्थिति है नहीं। देख ही रहे हैं। एक साल में दो मुख्यमंत्री बदले गये। और किसी को हमलोगों ने नहीं चुना वो ऊपर से थोपे गये। तो न वहां लोकतांत्रिक हिसाब–किताब है न नव निर्माण की गुंजाईश, वहां दो संघर्ष हें उत्तराखंड में। एक तो लोगों के अपे अस्तित्व को बचाने का संकट और दूसरा संघर्ष है सत्ता पकड़ने का संघर्ष। और दोनों विपरीत संघर्ष हैं। एक जो सत्ता पकड़ने वालों का संघर्ष है वो जनता के संघर्ष को खत्म करना चाहते हैं। मैं आपसे केवल एक ही बात पूछना चाहता हं कि हम लोगों की प्राथमिकताएं क्या हैं? राजधानी का सवाल सबसे बड़ा सवाल है। आज पता नहीं हमारे मंत्री रहते कहां है। कोई समस्या हो आपकी तो कुछ पता नहीं चलता। वो हमसे कोई मतलब नहीं रखते। तो यदि आप पहाड़ की राजधानी पहाड़ में नहीं लाएंगे तो कोई समस्या हल होने से रही।

फरवरी माह में होने वाले विधान सभा चुनाव को ध्यान में रखकर जन घोषणा पत्र बनाने के लिए भी चर्चा सेमिनार में की गई। जिसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित मुद्दे उभर कर सामने आए।

- राज्य का नाम उत्तरांचल के बजाय उत्तराखंड होना चाहिए।
- हरिद्वार जिले को उत्तराखंड से अलग रखा जाना चाहिए।
- राज्य की स्थायी राजधानी गैरसैंण घोषित हो।
- राज्य में 371 की धारा लागू की जाए।

- पूर्ण नशाबंदी लागू की जाए।
- मुजफ्फर नगर बलात्कार कांड के दोषियों को सजा दी जाए।
- जन प्रतिनिधि और अधिकारी अपनी संपत्ति की घोषणा करें।
- सीलिंग एक्ट लागू किया जाए तथा भूमिहीनों को भूमि दी जाए।
- जल–जंगल–जमीन पर जनता के अधिकारों को खत्म करने वाली विश्व बैंक की योजनाएं निरस्त की जाएं।

चर्चा के दौरान बांटे गए पर्चे

- Uttarakhand: The Need for a Comprehensive Eco-strategy — Suresh Nautiyal
- Globalization with Decentralized Planning: Evolving the Process in Uttaranchal — Prof. K.N. Bhatt
- Uttarakhand, in lieu of 'Swaraj' — Rajendra Dhasmana
- उत्तराखंड : वैकल्पिक शासन के लिए एक प्रस्ताव — पवन कुमार गुप्ता
- उत्तराखंड : आगामी चुनाव और क्षेत्रीय मुद्दे — व्योमेश जुगरान

भागीदारों की सूची

1. श्री राजेन्द्र धस्माना
2. श्री मनोज पांडे
3. प्रो. के.एन. भट्ट
4. प्रो. पुष्पेश पंत
5. प्रो. अरूण कुमार
6. प्रो. धीरूभाई शेठ
7. डा. गोबिंद सिंह
8. श्री पंकज बिष्ट
9. डा. शमशेर सिंह बिष्ट
10. श्री तरूण जोशी
11. श्री जगदीश कापड़ी
12. श्री पी.सी. तिवारी
13. श्री अमीनुर्रहमान
14. श्री गिरीश जोशी
15. श्रीमती कमला पंत
16. श्री सुरेश नौटियाल
17. श्री सुरेन्द्र मोहन
18. श्री योगेन्द्र यादव
19. प्रो. वी.बी. सिंह
20. श्री रघुवीर बिष्ट
21. श्री महिपाल सिंह
22. श्री चंद्र बहादुर टम्टा
23. श्री प्रेम बहुखंडी
24. सुश्री कमला बहुखंडी
25. श्री विजय प्रताप
26. श्रीमती गीता गैरोला
27. श्री हरिश्चंद्र चंदोला
28. श्री रामप्रसाद
29. श्री डी.के. बुड़ाकोटी
30. श्री शिव सिंह

31. डा. अरूण सिंह
32. श्री सूरजदेव सिंह
33. श्री दीपक प्रकाश भट्ट
34. डा. महावीर रावत
35. श्री बालादत्त कापड़ी
36. श्री के.आर. आर्या
37. श्री भूपेन सिंह
38. श्री व्योमेश जुगरान
39. श्री अवतार सिंह रावत
40. श्री प्रताप सिंह शाही
41. श्री बचन सिंह धनोला
42. श्री देवदत्त
43. सुश्री मोहिनी रौतेला
44. सुश्री कुसुम लता
45. श्री बीरेन्द्र कुमार गुप्ता
46. सुश्री मेधा
47. श्री चंदन जी
48. श्री सुनील कुकशाल
49. श्री बिक्रम मावड़ी
50. श्री बिक्रम सिंह ऐर
51. श्री आकाश जोशी
52. डा. अरूण प्रकाश ढोंढ़ियाल
53. श्री एम.सी. पांडे
54. श्री योगेन्द्र कुमार
55. श्री दीपक सिंह
56. सुश्री पुष्पा डिमरी
57. श्री प्रेम सुंदरियाल
58. सुश्री रीटा नाहटा
59. सुश्री शकुंतला
60. श्री राजेन्द्र सिंह
61. डा. रितु प्रिया
62. सुश्री ऋचा नागर
63. श्री अखिलेख चन्द्रप्रभाकर
64. सुश्री उनिता सच्चिदानन्द
65. श्रीमति सुरेन्द्री सुयाल
66. श्री प्रभात ध्यानी
67. सुश्री ईश्वरी दत्त जोशी
68. श्री रविन्द्र सिंह बसेरा
69. श्री प्रदीप टम्टा
70. सुश्री सुरभि शेठ
71. श्री मेहर सिंह डबास
72. श्री भुवन पाठक
73. श्री पवन कुमार गुप्ता
74. श्री विप्लव राही
75. श्री अनिरूद्ध सिंह कटौच
76. श्री प्रेम सिंह गोसाई
77. श्री हेमंत पशबोला
78. श्री बिनोद नेगी
79. श्री हरीश चन्द्र
80. श्री किशोर चन्द्र
81. सुश्री अरूणा डबास
82. श्री शिव प्रसाद भट्ट
83. श्री अशोक कुमार सिंह
84. श्री हरीश लखेड़ा
85. श्री गंगाधर
86. श्री खड़क सिंह खनी
87. श्री भूपेश जोशी
88. श्री राजेन्द्र रतूड़ी
89. श्री सुंदरचंद ठाकुर
90. श्री सुरेश चन्द्र पंत